केरलज्योति
केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर
संपादक
डॉ. रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61 दल : 8 अंक: **नवंबर 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5
श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य – **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 6
केरल हिंदी प्रचार सभा : एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक धरोहर – **डॉ गोपकुमार.जी.** 12
'उनके हस्ताक्षर': अमृता प्रीतम की नारी संवेदना की गहरी छानबीन – **डॉ. प्रीति.के** 16
सप्तक की कवयित्रियों के काव्य में स्त्री दृष्टि – **डॉ.ए.के.बिंदु** 19
संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में किसान एवं आदिवासी संघर्ष –**अंजना.ए.एस** 25
दांपत्य विघटन की मनोवैज्ञानिकता उषा प्रियंवदा की कहानियों में – **डॉ.लेखा पी** 27
कामकाजी एवं गैर-कामकाजी महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि का अध्ययन – **श्वेता पुरी** 29
समकालीन कहानियों में परंपरा एवं रूढ़ियों के विरुद्ध ग्रामीण औरतों का प्रतिरोध – **डॉ.जोयीस टॉम** 32
हिंदी भाषा : प्रकार्य के ऐतिहासिक पड़ाओं से – **डॉ सुमा ऐ** 35
मंजिल की ओर (कविता) – **श्रीनिधी शिवदासन** 37
कबीर के समाज चिंतन – **शशि कुमारी** 38
हिंदी गीत (कविता) – **डॉ जे रामचंद्रन नायर** 40
'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में स्त्री का संघर्षमय जीवन – **ब्रीस के रुद्धन** 41
थर्ड जेंडर संघर्ष की दस्तावेज : 'किन्नर कथा' उपन्यास के संदर्भ में – **अभिरामी सी जे** 43
"बिरहोर" आदिम जनजाति परिवारों का आहार प्रतिरूप एवं पोषण स्तर का मूल्यांकन जशपुर जिला के विशेष संदर्भ में - **लोकेष पटेल** 46
मानस कैलास - **मूल : मंजु वेल्लायणि**
अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम 52
देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 54
ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) 56
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार
प्रश्नोत्तरी – **डॉ.रंजीत रविशैलम** 58

मुखचित्र : मलयालम के कवि एवं सांस्कृतिक कार्यकर्ता पद्मश्री. पी.नारायण कुरुप

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
नवंबर 2024

संपादकीय

विश्व मंच पर हिंदी

विदेशों में, 150 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसमें अप्रवासी भारतीयों के अतिरिक्त स्थानीय छात्र भी हिंदी का अध्ययन करते हैं। एक समय था जब हिंदी का अध्ययन साहित्य एवं एक भाषा के रूप में मुख्य रूप से किया जाता था। किंतु आज हिंदी एक व्यावसायिक एवं व्यावहारिक भाषा के रूप में भी अपनायी जा रही है। विदेशों में हिंदी सांस्कृतिक दूत का काम भी करती है। अनेक विदेशी विद्वान हिंदी की विशिष्टता की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने इस भाषा पर अपना प्रभुत्व सिद्ध किया। उन्होंने हिंदी में रचनाएँ कीं और साथ ही हिंदी से अपनी भाषा में तथा अपनी भाषा से हिंदी में अनुवाद किया। यों हिंदी ज्ञान-विज्ञान एवं साहित्य-संस्कृति के आदान-प्रदान का माध्यम बन गई। विदेशों में ऐसे देश भी हैं जहाँ के लोगों ने हिंदी को अपनी अस्मिता के साथ जोड़े रखा। इन देशों में मौरीशस, सूरीनाम, फिजी, ट्रिनीडाड, गयाना आदि उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त देशों में हिंदी भाषी भारतीय मूल के नागरिकों की संख्या इतनी ज्यादा है कि वहाँ की राजनीति, प्रशासन और सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग है। भारत के पड़ोसी ऐसे देश भी हैं जहाँ अनायास ही हिंदी भाषा के रूप में विद्यमान है। नेपाल, भूटान, म्यान्मार, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन आदि देशों को इस वर्ग में समावेश किया जा सकता है। भारत के बाहर हिंदी के प्रति लोगों की दिलचस्पी निरंतर बढ़ती जा रही है। भूमंडलीकरण के कारण व्यापार और वाणिज्य की परिधियाँ देशों की सीमायें लाँघ रही हैं। वर्तमान में हिंदी के अध्ययन की सुविधा अनेक विश्वविद्यालयों में प्राप्त हैं।

इस समय विश्व में अमेरिका, कानड़ा, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, स्विटज़रलैंड, हॉलेंड, डेनमार्क, नॉर्वे, स्वीडन, इटली, आस्ट्रेलिया, उक्रेन, चीन, मंगोलिया, तुर्की, उज़्बेकिस्तान, थाईलैंड, मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनिदाद, ताजिकिस्तान, पॉलैंड, चेक गणराज्य, हंगरी दक्षिण आफ्रिका, जापान, दक्षिण कोरिया जैसे देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश, नेपाल, भूटान और म्यांमार में हिंदी पढ़ाया जाना बिलकुल स्वाभाविक है। हिंदी ने इंटरनेट के इस युग में अपना विस्तार प्रारंभ कर लिया है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

छठा सर्ग

परम सत्य की खोज

1. लौट आए थे नारायण दो वर्ष बाद चेंपष़ंती में
और नहीं गये पुराने गुरु के पास अध्ययन को
लगा था उन्हें कि जितना पढ़ना था वह हो चुका
और आगे पाना है अध्यात्म विषयक ज्ञान।
2. शांति मार्ग की खोज में थी उनकी अशांत आत्मा
व्याकुल था उनका चित्त जानने को परम सत्य को
और खोज हो चुकी थी ज्ञानज्योति पाने के लिए बहुत
पहले ही और चाहते थे लौकिक बंधन की मुक्ति भी।
3. सब की नज़रों में दीख पड़ा नारायण का वैराग्ययुक्त
सात्विक भाव जिससे घर के बुजुर्ग लोग हुए चिंतित और
उनके पास थे दो ही उपाय नारायण को ठीक रास्ते पर लाने को
लगाना उनको अध्यापक वृत्ति में या कराना उनका विवाह।
4. ज़मीन थी परिवार की घर की पूर्व दिशा में और बनायी
गयी वहाँ एक छोटी-सी पाठशाला पढ़ाने बच्चों को
वहाँ पढ़ाने लगे नारायण अकेले ही और रात को
सोते भी वहीं पर थे और करते थे आध्यात्मक साधना भी।
5. प्रस्ताव रखा एक बार मामाजी कृष्णन वैद्य ने विवाह का
अब समय नहीं हुआ है कहकर टाल दिया नारायण ने
उत्कंठा बढ़ी माता-पिता की और नारायण को भक्तिमार्ग से
विचलित करने को उन्होंने ठाना उनका विवाह कराने का।
6. पिताजी की रिश्तेदार लड़की से आया विवाह का प्रस्ताव
एक द्वारा तो कुछ विशेष न बोले नारायण किंतु
रिश्तेदारों की योजना के अनुसार उस लड़की को नारायण की
बहन ने देकर वस्त्र व आभूषण निभाया शादी का रस्म।
7. उन दिनों न समझा जाता था लोगों से कि विवाह के
पहले लडका और लड़की मिलें आपस में और जब लड़की से
पाणिग्रहण के लिए बुलाया गया नारायण को तब वे नहीं हुए
उपस्थित और पाणिग्रहण नहीं निभा सकती थी ननद।

8. देशाचार के अनुसार उन दिनों के नारायण की बहनें देकर
विवाहवस्त्र वधु को बुलाकर घर ले आयीं उसी की इच्छानुसार
फिर भेज दिया था मायके में कुछ लोगों के साथ और वधु का
घर था वर्कला के निकट के नेटुकंटा नामक स्थल में।
9. जिस दिन तय था पाणिग्रहण को उस दिन घूमते हुए नारायण
अगस्त्यकूट की पहाड़ियों में नेय्याट्टिंकरा नामक स्थल के अपने
कुछ परिचितों के पास जाकर रहे थे और उनको मिला संदेश कि
वे घर लौट आएं और उनपर कोई दबाव नहीं डाला जाएगा।
10. पाकर संदेश वे लौट आये घर और इस बीच
खराब हो गया था उनकी माताजी का स्वास्थ्य किसी
बीमारी से और वे लगे रहे अहोरात्र उनकी सेवा-शुश्रूषा में
और बीमारी बढ़ती गयी और चंद दिनों के बाद वे चल बसीं।

सातवाँ सर्ग

अवधूतकाल

1. अवधूतकाल में कहा था माताजी ने उनसे कि नाणु,
तू कहीं भी हो ज़रूरत पडने पर आ जाना मेरे पास
माँ को दिया वचन निभाया पुत्र ने और उनकी सेवा-शुश्रूषा
अंतिम घडी तक की और की उनकी अंत्येष्टि भी विधिवत्।
2. माताजी की अंत्येष्टि-क्रिया पूरी होने के बाद लोग ज़ोर
डालने लगे उनपर फिर से उसी लडकी से शादी के लिए
मध्यस्थ के द्वारा भी ज़ोर डालने पर उसे साथ लेकर
गये लड़की के घर और बैठे थे वे घर के बरामदे में।
3. घर में हुआ उनका स्वागत-सम्मान और उन्होंने
घर के सारे लोगों को बताया कि इस दुनिया में जन्म
लेता है हर व्यक्ति किसी खास काम करने के लिए और
हो सकता है मेरा और आप लोगों का अलग-अलग लक्ष्य।
4. उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करना पडेगा हमें
इसलिए आप देखें अपना काम और मैं करने जा
रहा हूँ अपना काम इतना कहकर वहाँ से निकल पडे
नारायण और इसी के साथ ही टूट गया वह वैवाहिक संबन्ध भी।
5. घरबार छोड़कर घूमने लगे वे अवधूत बनकर और तब से
टिकते नहीं थे कहीं एक जगह पर कई दिन और भटकते रहे
करुनागप्पल्ली के जंगल, वेलिमला की पहाडियों, समुद्री
तट, चट्टानी इलाकों एवं अन्य सुनसान जगहों में।

6. उन दिनों जब वे थे अरुविप्पुरम नामक जंगली प्रदेश में तो
लोग पहुँच गये ढूँढते हुए उनके पास खबर लेकर उनके पिताजी
माटन आशान की मृत्यु की और तब से टूट गया पूर्ण रूप से
उनका संबन्ध परिवार से और व्यतीत करने लगे जीवन अवधूत का।
7. उन्होंने रखा प्रज्वलित निरन्तर आध्यात्मिक ज्ञान की
ज्योति को और उनकी दृष्टि में वेदान्त ही मुख्य आधार
है तत्त्वज्ञान का, भारत की आत्मा है, प्राण है जिसमें
योगदान अनेक गुरुओं का पूर्व में रहा है महत्वपूर्ण।
8. लोग अभिभूत हुए उनके अगाध ज्ञान से अध्यात्म-विषयक
और करते थे उनकी व्याख्या सुग्राह्य सरल भाषा में और
समझाया उन्होंने सब को अध्यात्म का परम तत्त्व अद्वैत को
जो है वास्तव में भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वरूप।
9. जब नज़र डाली उन्होंने समाज में तो हुआ मालूम
कि तत्कालीन समाज में प्रचलित अस्पृश्यता जैसे
अनाचार, जाति-भेद आदि हैं निरर्थक और इसलिए
उन्होंने अपनी आवाज़ बुलंद की उन्हें दूर करने को।
10. जनता समझ गयी उनकी महिमा और पुकारा उन्हें श्रद्धा-
भक्ति भाव से श्रीनारायण गुरु और सर्वत्र प्रसिद्ध हुए
वे उसी नाम से और न रही उनकी कीर्ति केरल तक सीमित
बल्कि फैली केरल के बाहर श्रीलंका और अन्य देशों में भी।
11. उन्होंने किया अनुवाद तमिल की विख्यात कृति तिरुकुरल का
मलयालम में तमिल से अनजान मलयालम भाषियों के लिए
दुर्भाग्य से इसके तीन अध्याय ही उपलब्ध है वर्तमान में
फिर भी यह रचना है अनुवाद कला का उत्तम दृष्टांत।
13. अपने अवधूत काल में ही किया है गुरुदेव ने अनुवाद
ईसावासोपनिषद् का भी मलयालम में जो बन गया वरदान
संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ लोगों को और ये दोनों रचनायें हैं
साक्ष्य उनके सफल अनुवादक एवं भाषा-प्रवीण होने का।
14. विशिष्ट महत्व रखता है सन् अठारह सौ तिरासी वर्ष अवधूत
जीवन में गुरुदेव के इसलिए कि हुआ उनका समागम
ज्ञानी योगी मनीषी चट्टंपी स्वामी से प्रसिद्ध चेंपषंती के दुर्गाभगवती
मंदिर में जो बना एक नया मोड उनके जीवन में।
15. चट्टंपी स्वामी का वास्तविक नाम था कुंञ्ञन पिल्लै और
वे अपनी पाठशाला में अग्रणी छात्र व मॉनिटर होने से इसी
अर्थ में प्रयुक्त शब्द चट्टंपी नाम से हुए वे ज्ञात और
बाद में उनका चट्टंपी स्वामी नाम हुआ प्रचलित सब कहीं।

16. उन दिनों जीवित थे तैक्काट अय्याव नामक एक शिवयोगी
जिनके शिष्यत्व में सीखी थी चट्टंपी स्वामी ने योगविद्या
और वे ले गये नारायण गुरु को भी अपने गुरु के पास और
नारायण गुरु ने भी दीक्षा पायी शिवराज योग व ज्ञानमार्ग की।
17. होने पर भी योगी गृहस्थाश्रमी थे तैक्काट अय्याव जिन्हें
बाद में प्राप्त हुई ख्याति अय्याव स्वामी के रूप में और
उनका समाधि-स्थल स्थित है तैक्काट नामक जगह में जो है
निकट तिरुवनन्तपुरम में 'शांति कवाट' नामक श्मशान के।

आठवाँ सर्ग

अय्याव स्वामी और उनके प्रमुख शिष्य

1. चट्टंपी स्वामी हुए हैं विख्यात विद्याधिराज चट्टंपी स्वामी
के नाम से और श्रीनारायण गुरु और चट्टंपी स्वामी की मैत्री
सहायक हुई समाज को आध्यात्मिक मार्गदर्शन देने में और चट्टंपी
स्वामी थे गुरुदेव को ज्येष्ठ भ्राता और मार्गदर्शक के रूप में।
2. अय्याव स्वामी के समाधि-स्थल पर अब है एक शिव मंदिर
जहाँ अनेक आराधक पहुँचते हैं भक्ति भाव से और वे रहे थे
तिरुवनंतपुरम में स्वातितिरुनाल और श्रीमूलम राजाओं के शासन
काल में और उनकी आध्यात्मिक चेतना से प्रभावित थे दोनों राजा ।
3. अगाध ज्ञान और परिचय था उनको अंग्रेज़ी भाषा में और
इसलिए राज-परिवार ने उनको नियुक्त किया तैक्काट
रेसिडन्सी में अधीक्षक के पद पर और रहने लगे, वे
राजा द्वारा दिये गये तैक्काट के एक भवन में ससन्तोष।
4. रहने के कारण तैक्काट में वे जाने जाते थे तैक्काट
अय्याव नाम से और होने से वे बड़े योगी उनकी थी
बड़ी शिष्य परंपरा जिसमें प्रमुख थे चट्टंपी स्वामी
श्रीनारायण गुरु, मुहम्मद, योगिनी अम्मा आदि।
5. अन्य शिष्यों में थे कीर्तिमान चित्रकार राजा रविवर्मा
और स्वयं राजा स्वातितिरुनाल भी थे उनके प्रिय शिष्य
अंग्रेज़ लोग भी प्रभावित थे उनकी योगविद्या से और
बहुचर्चित व जनप्रिय हुई उनकी व्याख्या शिवपुराण की।
6. अय्याव स्वामी थे श्रीनारायण के वास्तविक आध्यात्मिक गुरु
किन्तु उनके लिए मार्गदर्शक व विद्यागुरु थे चट्टंपी स्वामी
आदर करते थे श्रीनारायण चट्टंपी स्वामी को ज्येष्ठ भ्रातातुल्य
और चर्चा करते थे दोनों समाज की कुरीतियों व अंधविश्वासों की।

7. अय्याव स्वामी ने ही प्रेरणा दी एक दिन श्रीनारायण को
मरुत्वामला पहाड में जाकर तप करने की और अनंतर
अय्याव स्वामी की समाधि के बाद चट्टंपी स्वामी और
श्रीनारायण गुरु ने की तीर्थयात्रा और पहुँचे मरुत्वामला।
8. दोनों पहुँचे थे मरुत्वामला पहाड़ पर करीब अठारह सौ
चौरासी को जहाँ ठाना था श्रीनारायण गुरु ने तपस्या
करने को और रहे दोनों एक साथ वहाँ पर कुछ दिन, फिर
चले गये चट्टंपी स्वामी शुभाशीष देकर सफलता का।
9. साधना करने एकांत में चुना उन्होंने मरुत्वामला की
चोटी पर स्थित 'पिल्लातट' नामक गुफ़ा को इसलिए कि
वह नहीं पड़ती थी बाहर से लोगों की नज़र में और
विशाल जगह थी गुफ़ा में और वातावरण भी साफ़-सुथरा।
10. करते थे उसी गुफ़ा में वे तपस्या और समाचार
उसका नहीं मिला था आम लोगों को कुछ दिनों तक
इसी बीच फैली जनश्रुति कि मरुत्वामला की गुफ़ा में
साधना और तपस्या कर रहे हैं श्रीनारायण गुरु एकांत में।
11. खबर मिली गुरुदेव की परम भक्त चेट्टियारम्मा को
जिसके पति थे एक ओवरसियर और कुतूहल होकर
लेकर कुछ लोगों को अपने साथ करते-करते साफ़ जंगल को
पहुँचे गुफ़ा के पास और देखा वहाँ बैठते गुरुदेव को।
12. सब लोग सहम गये देखकर उनकी दोनों तरफ़ लेटे हुए
थे दो बाघ और जब गुरुदेव ने किया इशारा तो दोनों
चले गये वहाँ से जिसका वृत्तान्त सुनाया था ओवरसियर ने
अपनी पत्नी को और सुनकर सब लोग हुए चकित।
13. तदनन्तर गुरुदेव मरुत्वामला छोड़कर उतरे नीचे और
गये दक्षिण के तीर्थस्थानों में अकेले ही अज्ञात होकर जो कुछ
मिलता था खा लेते थे और पहुँचते थे जहाँ होती थी
बैठक और सत्संग का लाभ उठाने पहुँचते थे लोग वहाँ।
14. पारखी लोग उनकी महिमा पहचान लेते थे और अपने
अज्ञात जीवन में वे कन्याकुमारी, कुलच्चल, करिंकुलम और
तिरुवनंतपुरम जैसी जगहों के समुद्रीतट में बिताते थे
अवधूत का-सा जीवन और फ़ैलने लगी उनकी ख्याति।

नौवाँ सर्ग

नागरकोविल में योगिनी माँ के दर्शन

1. बातें कई अज्ञात हैं गुरुदेव के अवधूतकाल की
फिर भी मिली हैं कुछ जानकारियाँ उनके जीवनीकारों से
विद्यानंद तीर्थपाद सवामी ने दिया है एक वृत्तान्त जिसका
किया है उद्धरण अपनी किताब में श्री पी.परमेश्वरन ने।
2. श्री पी.परमेश्वरन थे मृत्युपर्यन्त तिरुवनन्तपुरम में स्थित
भारतीय विचार केन्द्र के निदेशक के रूप में जिनकी फैली थी
कीर्ति चारों ओर एक कर्मठ समाज सेवी, संस्कृति के पुरोधा
भगवद् गीता एवं भारतीय संस्कृति के उद्घोषक के रूप में।
3. कथित है उद्धरण में कि उस समय नागरकोविल की
प्रमुख सड़क के किनारे थी एक योगिनी माँ लीन
योगनिद्रा में और कर रही थी आराम वहाँ और
वे थी असंग सभी बाह्य व्यवहारों से संसार के।
4. फैली थी सारे दक्षिण में उनकी कीर्ति और हुई
इच्छा गुरुदेव के मन में उनके दर्शनों की और पहुँचे
एक दिन सबेरे नौ बजे नागरकोविल में और देखा
गुरुदेव ने काफ़ी भीड़ थी चारों ओर योगिनी माँ के।
5. उस भीड में खड़े थे एक तहसीलदार भी भक्तिभाव से
जो लाए थे अपनी खेती के कलमी आम के फल
योगिनी माँ को भेंट चढ़ाकर पूजा करने के विचार से और
सोचा गुरुदेव ने कि भीड कम होने पर मिलेंगे उनसे।
6. सोचकर ऐसा, थोड़ी दूरी पर एक बड़े पेड की छाया में
बैठकर करने लगे आराम तब उनको बडी प्यास
थकावट और भूख लगी थी और योगिनी माँ तब भी आँख
मूँदकर लेटी थी और खोलती नहीं थी आँखें आम तौर पर।
7. योगिनी माँ जो अकसर नहीं खोलती थी आँखें एकदम
खोली आँखें तो भीड़ आश्चर्यचकित हो देखती रही उन्हें
दृष्टि पड़ी उन उपहारों पर जिन्हें लाए थे लोग श्रद्धा भक्ति
एवं समर्पण के भाव से पर योगिनी माँ बोली कुछ नहीं।
8. बोलती नहीं थी योगिनी माँ करती थी बातें इशारों से
और बताया इशारों से कि थोड़ी दूरी पर रहे किसी को
वह सब दिया जाए और तदनंतर मूँद ली आँखें उन्होंने
और वह तहसीलदार निराश हो खड़ा रहा काफ़ी देर।

9. समझ नहीं पाये लोग कि योगिनी माँ ने कहा
किसको देने को तब अचानक खोली आँखें उन्होंने
करती हुई इशारा गुरुदेव की ओर बताया की सारा
उपहार सर्मार्पित करें उन्हें तो हो गये लोग चकित।

10. साश्चर्य तहसीलदार सहित भक्तगण दौड़े नारायणगुरु
की ओर समझकर कि वे हैं एक महासिद्ध लोगों ने
किया उनका दण्डवत प्रणाम और किया सर्मार्पित सारा
उपहार किन्तु गुरुदेव ने उनमें से लिया सिर्फ़ एक आम।

11. खाकर उसे दूर की उन्होंने अपनी थकावट व भूख और
जिद करने पर भक्तगणों से गये उनके घर और लोगों ने
किया उनका अभिषेक जैसे करते हैं भगवान की मूर्ति को
उससे हो गया खराब उनका स्वास्थ्य और हुए पीडित बुखार से।

12. नागरकोविल में रहना पडा गुरुदेव को बुखार-शमन तक
जब कोई नहीं था योगिनी माँ के पास तब मिले उनसे और
उन्हें दिया आशीर्वाद माँ ने तदनन्तर वे गये तिरुवनन्तपुरम में
जहाँ वे मिले श्रेष्ठ ज्ञानी साधक योगी चट्टंपी स्वामी से।

13. चट्टंपी स्वामी को बताया उन्होंने सारा वृत्तान्त नागरकोविल का
और उन्होंने सुनीं ध्यान से गुरुदेव की बातें और कहा यों:
कुछ कार्य करने को नियोग होता है ईश्वर से कुछ लोगों को
और तुम्हें भी करने पडेंगे कई कार्य ईश्वर के नियोग से।

14. अपने अवधूतकाल में वे नहीं रहते थे तीन से अधिक दिन
किसी प्रदेश में और घुमक्कड़ की यह प्रवृत्ति रही उनके
मन में काफ़ी वृद्धावस्था में भी और अपने अवधूत काल में
चले थे वे कई बार दक्षिण भारत के प्रदेशों से होकर।

15. उन्हें हृदयंगम था प्रत्येक ग्राम की सड़कों-गलियों की
सूक्ष्म और विशद बातों सहित दक्षिण भारत का पूरा भूगोल
निरन्तर करते थे वे संपर्क सब तबकों के लोगों से
और हुआ प्राप्त उन्हें जन जीवन का व्यापक अनुभव।

(क्रमशः)

केरल हिंदी प्रचार सभा : एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक धरोहर

डॉ गोपकुमार.जी.

भारत के विभिन्न प्रांतों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनमें से एक प्रमुख संस्था है केरल हिंदी प्रचार सभा, जिसने हिंदी को एक गैर-हिंदी भाषी क्षेत्र में लोकप्रिय बनाने और उसे जन-जन तक पहुँचाने का अतुलनीय प्रयास किया। यह संस्था न केवल एक भाषाई आंदोलन का प्रतीक है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय एकता के सिद्धांतों को भी बढ़ावा देने में अग्रणी रही है। इस लेख में, हम इस संस्था के उद्देश्यों, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, शैक्षणिक योगदान, चुनौतियों, उपलब्धियों, और भविष्य की योजनाओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

केरल हिंदी प्रचार सभा की स्थापना 1934 में स्वर्गीय के. वासुदेवन पिल्लै जी द्वारा की गई थी। उस समय इसे 'तिरुवितांकूर हिंदी प्रचार सभा' के नाम से जाना जाता था। इस सभा की स्थापना का मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा का केरल में प्रचार-प्रसार करना था, जहाँ उस समय अंग्रेजी और मलयालम का व्यापक प्रभाव था। 1961 में, इसे 'केरल हिंदी प्रचार सभा' के नाम से पुनः नामांकित किया गया। संस्था की स्थापना राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 'राष्ट्रभाषा' के विचारों से प्रेरित हुई थी। गांधीजी के अनुसार, हिंदी को राष्ट्र की संपर्क भाषा बनाना आवश्यक था ताकि विभिन्न प्रांतों के लोग एक-दूसरे से संवाद कर सकें और राष्ट्रीय एकता को मजबूत कर सकें। इसी आदर्श को लेकर सभा ने हिंदी को केरल के विभिन्न वर्गों में प्रसारित करने का बीड़ा उठाया।

केरल हिंदी प्रचार सभा का मुख्य उद्देश्य केरल के सभी क्षेत्रों में हिंदी भाषा के अध्ययन और इसके प्रति जागरूकता बढ़ाना था। सभा का उद्देश्य हिंदी भाषा को केरल में लोकप्रिय बनाना, हिंदी साहित्य और संस्कृति को बढ़ावा देना, और हिंदी को एक सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित करना था। इसके साथ ही, सभा ने भारतीय संस्कृति और मूल्यों के प्रसार में भी अपना योगदान दिया। सभा के कार्यक्रम और गतिविधियाँ न केवल भाषा शिक्षण पर केंद्रित थीं, बल्कि भारतीय साहित्य, संस्कृति, और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने पर भी जोर देती थीं। सभा के शैक्षणिक प्रयासों के तहत हिंदी भाषा में दक्षता प्राप्त करना, अनुवाद कार्यों को प्रोत्साहित करना, और हिंदी के प्रति समर्पित व्यक्तियों को सम्मानित करना भी शामिल था।

सभा के शुरुआती वर्षों में उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। केरल, एक अहिंदी भाषी क्षेत्र होने के कारण, यहाँ हिंदी भाषा के प्रति स्वाभाविक रुचि नहीं थी। इसके अलावा, मलयालम और अंग्रेजी का प्रबल प्रभाव था, जिससे हिंदी के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना कठिन था। इन चुनौतियों के बावजूद, सभा ने अपने प्रयासों को जारी रखा और हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए विभिन्न अभियान चलाए। सभा ने केरल के विभिन्न हिस्सों में हिंदी कक्षाएँ और शिविर आयोजित किए, जिससे लोग हिंदी सीखने के प्रति आकर्षित हुए। इसके अतिरिक्त, सभा ने हिंदी के प्रचार के लिए अनेक प्रतियोगिताओं, साहित्यिक सम्मेलनों और कार्यशालाओं का आयोजन किया, जिसने हिंदी भाषा के प्रति लोगों की रुचि बढ़ाई।

केरल हिंदी प्रचार सभा का शैक्षणिक योगदान उल्लेखनीय रहा है। सभा ने हिंदी भाषा को प्रभावी ढंग से शिक्षित करने के लिए विभिन्न स्तरों की परीक्षाएँ दूसरी, राष्ट्र की शुरुआत की। इन परीक्षाओं में हिंदी प्रथमा, हिंदी प्रवेश, हिंदी भूषण, और साहित्याचार्य जैसी परीक्षाएँ शामिल हैं। ये परीक्षाएँ न केवल छात्रों को हिंदी भाषा में दक्षता प्रदान करती हैं, बल्कि उन्हें हिंदी साहित्य और संस्कृति के प्रति गहरी समझ भी विकसित करने का अवसर देती हैं। सभा ने स्कूलों

और कॉलेजों में हिंदी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों की शुरुआत की। इसके अतिरिक्त, सभा ने शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आचार्य (बी.एड) आयोजित किए, जिससे हिंदी शिक्षण के स्तर में सुधार हुआ। सभा ने राज्य में हिंदी के व्यापक प्रसार के लिए विभिन्न शिक्षण सामग्री, पुस्तकें, और शैक्षणिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं।

सभा का प्रकाशन विभाग भी हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार में अग्रणी रहा है। सभा ने हिंदी साहित्य, भाषा, और शिक्षा से संबंधित अनेक पुस्तकों, पत्रिकाओं और साहित्यिक कृतियों का प्रकाशन किया। सभा की 'केरल ज्योति' मासिक पत्रिका ने केरल के हिंदी साहित्यकारों और लेखकों को एक मंच प्रदान किया, जहाँ वे अपनी रचनाओं को प्रस्तुत कर सकते थे। यू जी सी द्वारा अनुमोदित यह पत्रिका राज्य में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सभा के पुस्तकालय में लगभग 35,000 से अधिक पुस्तकें उपलब्ध हैं, जो हिंदी साहित्य के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इस पुस्तकालय को केरल विश्वविद्यालय द्वारा शोध विद्वानों के लिए संदर्भ पुस्तकालय के रूप में मान्यता दी गई है। यहाँ की पुस्तकों का उपयोग शोधकर्ता, विद्यार्थी, और हिंदी प्रेमी सभी कर सकते हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा ने हिंदी भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक जागरू कता को भी बढ़ावा दिया है। सभा के कार्यक्रमों और गतिविधियों ने केरल के लोगों के बीच राष्ट्रीय एकता की भावना को मजबूत किया है। सभा ने स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, और गांधी जयंती जैसे राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन कर लोगों में देशभक्ति और एकता की भावना को प्रोत्साहित किया है। सभा ने हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति और परंपराओं को भी बढ़ावा दिया है। सभा के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय नृत्य, संगीत, और कला के विभिन्न रूपों का प्रदर्शन किया जाता है, जो देश की सांस्कृतिक धरोहर को संजोने का काम करता है।

केरल हिंदी प्रचार सभा ने हिंदी भाषा की तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सभा ने हिंदी टाइपिंग और शॉर्टहैंड प्रशिक्षण के लिए विशेष संस्थान स्थापित किए, जहाँ छात्रों को हिंदी भाषा में तकनीकी दक्षता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। इन संस्थानों के प्रशिक्षण ने हिंदी के विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर प्रदान किए हैं। सभा ने केंद्रीय सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए हिंदी की व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन भी किया है। इन कार्यशालाओं ने सरकारी कार्यों में हिंदी के उपयोग को प्रोत्साहित किया और कर्मचारियों की हिंदी में दक्षता को बढ़ाया।

केरल हिंदी प्रचार सभा ने अपने कार्यों के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैं। सभा के प्रयासों से केरल में हिंदी भाषा की जड़ें गहरी और मज़बूत हुई हैं और हिंदी के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी है। सभा के माध्यम से अनेक छात्रों ने हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त की है और वे अब विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत हैं। सभा के मुद्रणालय ने हिंदी और अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का व्यापक रूप से प्रकाशन किया है, जिससे हिंदी साहित्य के प्रसार में वृद्धि हुई है।

केरल हिंदी प्रचार सभा के साथ अनेक प्रमुख नेता, विद्वान, और साहित्यकार जुड़े रहे हैं। इनमें राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, डॉ. सम्पूर्णानंद, श्री यू.एन. ढेबर, डॉ. यशपाल, डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, और डॉ. अमृता प्रीतम जैसे महान व्यक्तित्व शामिल हैं। इन व्यक्तियों ने सभा के कार्यों को समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान किया, जिससे सभा की प्रतिष्ठा और प्रभावशीलता में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त, सभा के विभिन्न कार्यक्रमों और दीक्षांत समारोहों में समय-समय पर देश के कई प्रख्यात नेता और विद्वान शामिल हुए हैं। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, डॉ. सम्पूर्णानंद, श्री पट्टम ए. थानु पिल्लई, श्री भक्त दर्शन, डॉ. यशपाल, पंडित कमलापति त्रिपाठी, श्री विष्णु प्रभाकर, डॉ. आर.आर. दिवाकर, श्री अर्जुन सिंह, श्री शिवराज वी. पाटिल, डॉ. विश्वम्भर नाथ पांडे, श्री जयपाल रेड्डी, और श्री एम.पी. वीरेंद्र कुमार जैसे महान हस्तियों ने सभा के

कार्यों में भागीदारी की है। इनके अतिरिक्त, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरू , श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री वी.वी. गिरि, आचार्य कृपलानी, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री शंकर दयाल सिंह, श्री रविंद्र कालिया, श्री गोविंद मिश्र, और श्रीमती चित्रा मुद्गल जैसे व्यक्तित्वों ने भी सभा के कार्यों को सराहा है।

सभा का यह दावा है कि उसके प्रयासों ने केरल में हिंदी के प्रचार और प्रसार की मजबूत नींव रखी है। सभा के कई कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जिनमें डॉ. गंगा शरण सिंह पुरस्कार, गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार, और राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार आदि शामिल हैं। 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर फिजी में सभा को विश्व हिंदी सम्मान से भी नवाजा गया था।

सभा का उद्देश्य हिंदी भाषा को और भी सुदृढ़ बनाना, मलयालम-हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में कार्य करना, और राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, और हिंदी सप्ताह जैसे आयोजनों के माध्यम से हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता बढ़ाना है। सभा की योजनाओं में हिंदी को तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में भी एक सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित करना शामिल है।

केरल हिंदी प्रचार सभा की स्थापना और इसके उद्देश्यों को समझने के लिए हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि भारत की विविधता में एकता की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए भाषा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी को राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए केरल जैसे राज्य में हिंदी का प्रचार अत्यंत महत्वपूर्ण था। केरल हिंदी प्रचार सभा ने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने प्रारंभ से ही न केवल शैक्षणिक, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी कार्य किया है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के समय, महात्मा गांधी ने यह महसूस किया कि हिंदी को एक संपर्क भाषा के रूप में विकसित करना अनिवार्य है ताकि पूरे देश में संचार और आपसी समझ व संबंध को बढ़ावा दिया जा सके। उसी विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए केरल हिंदी प्रचार सभा का गठन किया गया। इस संदर्भ में, केरल हिंदी प्रचार सभा की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसने हिंदी भाषा को एक अहिंदीभाषी क्षेत्र में स्थापित करने के प्रयासों की शुरुआत की।

निष्कर्ष : केरल हिंदी प्रचार सभा का योगदान न केवल हिंदी भाषा के प्रचार में है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, साहित्य, और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण रहा है। इस संस्था ने केरल के लोगों को हिंदी भाषा से जोड़ा, उन्हें हिंदी साहित्य और संस्कृति से परिचित कराया, और राष्ट्रीय एकता के आदर्शों को बढ़ावा दिया। प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद, सभा ने अपने लक्ष्यों की ओर निरंतर प्रयास किया और उसे बड़े पैमाने पर सफलता भी मिली।

सभा के शैक्षणिक और साहित्यिक योगदान से लेकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों और तकनीकी शिक्षा तक, हर क्षेत्र में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। इसके प्रयासों ने न केवल केरल में हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाया, बल्कि इसे एक शैक्षणिक और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्थापित किया।

भविष्य में, सभा के सामने और भी चुनौतियाँ होंगी, लेकिन इसके अब तक के इतिहास और उपलब्धियों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि केरल हिंदी प्रचार सभा हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को सशक्त बनाने की दिशा में निरंतर कार्य करती रहेगी। सभा के प्रयासों से न केवल हिंदी का विकास होगा, बल्कि यह भारत की विविधता में एकता के सिद्धांत को भी मजबूत करेगी।

सभा का यह सफर केवल भाषा के प्रचार का नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक और सामाजिक आंदोलन का भी है, जो भारतीयता की जड़ों को गहरे तक मजबूत करने की दिशा में अग्रसर है। इस प्रकार, केरल हिंदी प्रचार सभा का योगदान भविष्य में भी हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहेगा।

सह आचार्य
हिंदी विभाग
सरकारी बी.जे. एम. कॉलेज
चवरा, कोल्लम

'उनके हस्ताक्षर': अमृता प्रीतम की नारी संवेदना की गहरी छानबीन

डॉ. प्रीति.के

'उनके हस्ताक्षर' अमृता प्रीतम की एक संक्षिप्त, लेकिन अत्यंत प्रभावशाली औपन्यासिक कृति है। यह लघु उपन्यास प्रतीकात्मकता से भरा हुआ है। इसमें 'ज़िंदगी' और 'हवा' नारी का रूप लेकर भारत की विभिन्न स्त्रियों से मिलती हैं। इस प्रक्रिया में, उन्हें हर स्तर पर और हर रूप में नारी का शोषण दिखाई देता है। अंततः वे उल्का नामक एक महिला से मिलती हैं, जो वास्तव में जीवित और चेतन शील है। यह उल्का, असल में अमृता प्रीतम का ही प्रतीक है। उपन्यास की भूमिका में अमृता जी ने लिखा है "अहसास हुआ कि इस ज़मीन पर जो कहा जा सकता था, वह कहानी में नहीं उतर पाया था। यह अहसास कुछ इस तरह मेरा पीछा करने लगा कि एक दिन मुझे पकड़कर बैठ गया। कुछ और मसले भी थे, जो कहानी में नहीं आ पाए थे। और उन सबको लेकर पाँच की जगह सात श्रेणियों के किरदार सामने रखे और उन सबको कागज़ पर उतार दिया। अब उसे नाम दिया है- उनके हस्ताक्षर।"[1] इसमें मुख्य पात्र कोई नहीं है, फिर भी समाज के अलग-अलग स्थानों में, भिन्न-भिन्न रूपों में स्त्री किस तरह शोषित और प्रताड़ित होती है, इसका मर्मस्पर्शी चित्रण है। लेखिका की राय में, जब लिखने के लिए मैंने कलम पकड़ी तो यह मेरे जेहन का तकाज़ा था कि मेरे लेखन की नायिका वह स्त्री होगी, जो द्रौपदी की तरह भरी सभा में कोई सवाल पूछने की जुर्रत रखती हो।[2] लेखिका के अनुसार लेखक और पाठक का रिश्ता सही अर्थों में मुहब्बत का रिश्ता है, जो हर किस्म से एहसानों से मुक्त है और जो केवल अपनी जरूरत के बल पर जीता है, दोनों पक्षों की अपनी-अपनी जरूरत के बल पर। उनका लेखन इंसान के भीतर सोए हुए देवताओं को जगाने का प्रयत्न है।

'उनके हस्ताक्षर' शीर्षक उपन्यास नारी संवेदना और नारी-शोषण का दस्तावेज है। इसमें भारतीय समाज में महिलाओं के प्रति होने वाले शोषण और अत्याचार का मार्मिक चित्रण किया गया है। यह दर्शाता है कि चाहे महिला पत्नी के रूप में हो, विधवा के रूप में, या किसी अन्य भूमिका में, उसे समाज में हर स्थिति में उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। उसके जीवन के छोटे-छोटे ब्योरों को अमृता जी ने कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। नारी की दयनीय स्थिति हमारे समाज की विकृत मानसिकता का परिचायक है। महिलाओं के अधिकारों और उनके साथ होने वाले व्यवहार पर पुनर्विचार करना आवश्यक है ताकि ऐसी क्रूरता और असमानता का अंत हो सके। यह उपन्यास समाज में बदलाव लाने की आवश्यकता की ओर इंगित करता है, जिससे नारी को सम्मान, स्वतंत्रता, और समान अधिकार मिल सकें।

उपन्यास में हवा और ज़िंदगी मनुष्य का रूप धारण करके भारत की सात बेटियों से मिलती हैं, जो नारी जाति के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ज़िंदगी की इच्छा है कि उन बेटियों को कुछ भेंट दें। हवा कहती है, उनका होना और जीना तो कर्म है, तू ही ज़िंदगी है। फिर इसके बाद उन्हें क्या देगी? दोनों पहले एक इमारत के पास पहुँचती हैं। उस इमारत के मालिक ने अपनी पत्नी को भीतर रखकर बाहर ताला लगा दिया है। दोनों उस स्त्री से नहीं मिल पाते। तब ज़िंदगी कहती है - "मैं तो उसकी साँसों में धड़कती हूँ। अतः मैं उससे मिलने जा सकती हूँ। 'तब हवा जो कहती है, वह लेखिका के विचारों का प्रतिबिंब है' महज साँस लिए जाने को ज़िंदगी नहीं कहते"[3]। उस इमारत की ऊँची-ऊँची दीवारें परंपराओं की दीवारें हैं, ये परंपराएँ - कुल की, समाज की, और धर्म की। इसके बाद वे एक मजदूरिन से मिलते हैं, जो अपनी छोटी-सी पुत्री को रोता छोड़कर गाड़ी की पटरी पर पड़ा कोयला उठा रही थी। उसकी छोटी पुत्री रो रही है, पर उस मजदूरिन की छाती में दूध नहीं है, पति बीमार

है और पुत्र एक सेब चुराने के आरोप में जेल में बंद है। उस पुत्र को छुड़वाने के बहाने एक व्यक्ति उसपर बलात्कार करना चाहता है, पर वह वहाँ से भाग खड़ी होती है। भयंकर गरीबी में भी उस स्त्री ने अपने आपको सुरक्षित रखा है। पुरुषों की पाशविकता स्त्री की दयनीय स्थिति में भी उसका स्त्रीत्व लूटने को तत्पर है। यहाँ मजदूरिन की स्थिति समाज के निम्न वर्ग की महिलाओं की वास्तविकता को उजागर करती है, जो गरीबी, भूख, और अन्याय से जूझ रही हैं। मजदूरिन ने कभी 'ज़िंदगी' का नाम नहीं सुना, जो यह इंगित करता है कि उसके जीवन में सुख, शांति, और उम्मीद जैसी चीजें कभी अस्तित्व में नहीं रही हैं।

नारी विधवा हो तो, उसकी स्थिति अत्यंत निराशाजनक और दयनीय होती है। उसे उसकी ससुराल वाले कार्तिक महीने की ठिठुरती ठंड में मंदिर की सीढियों पर बैठने के लिए विवश कर देते हैं। "उनके परिवारवालों ने उन्हें निष्ठुरता से घर से निकाल दिया है। आगे वे देखती हैं कि एक विधवा को सती के लिए ले जाया जा रहा है। यह देखकर ज़िंदगी को विश्वास नहीं होता कि कोई इंसान इस तरह स्वयं ही चलकर चिता में बैठ सकता है। तब हवा कहती है, 'तुम इंसान की बात करती हो, औरत इंसान नहीं होती।"[4] सती प्रथा का वर्णन यह दर्शाता है कि समाज में प्राचीन और अमानवीय प्रथाएँ किस हद तक महिलाओं को कष्ट और मृत्यु की ओर धकेल सकती हैं। इस संदर्भ में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का कथन उल्लेखनीय है - "हमारे देश के शोषितों और पीड़ितों में सिर्फ किसान, मजदूर ही नहीं, हमारी माताएँ और बहनें, पत्नियाँ और बेटियाँ हमारे शोषण और उत्पीड़न की कम शिकार नहीं हैं, जिन्हें दूर किए बिना हम अपने देश में नई मानवता की सृष्टि और विकास नहीं कर सकते।"[5]

"जब 'ज़िंदगी' आगे बढ़ी तो देखा कि एक घर से धुआँ निकल रहा है। भीतर एक बहू जल रही है, मांस जलने की दुर्गंध आती है। वह स्वयं नहीं जली है, बल्कि जलायी गई है। ज़िंदगी हैरान है, पर हवा का कहना है, 'शादी-ब्याह के व्यापार में जब घाटा दिखने लगता है तो बहू की धोती में आग लग जाती है।"[6] उसका यों जलना, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह और कानून की मर्यादाओं का दुष्परिणाम है। अनमेल विवाह और दहेज प्रथा के कारण नारी जीवन करुणा से अप्लावित हुआ है। यह घटना हमारे समाज में गहराई से जड़ जमाए हुए दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की कुरीतियों को उजागर करती है, जिनका सीधा असर नारी जीवन पर पड़ता है।

उपन्यास में नारी जीवन की एक और क्रूर और अपमानजनक प्रथा का वर्णन किया गया है, जहाँ नववधु को अपने पति के घर के बजाय गाँव के जमींदार के घर ले जाया जाता है, और उसे अपनी पहली रात जमींदार के साथ बिताने के लिए मजबूर किया जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें महिला की इच्छाओं और उसकी गरिमा का कोई स्थान नहीं है। यह न केवल नारी के सम्मान और गरिमा का हनन है, बल्कि यह समाज में व्याप्त शक्ति असंतुलन और अन्याय की भयावहता को भी उजागर करता है। ज़िंदगी स्त्रियों की ऐसी दशा देखकर थक जाती है, वह उस नववधु का विलखना नहीं देखना चाहती। तब हवा कहती है, मैं तो जाने किस काल से ऐसी कितनी ही लड़कियों के आँसू मिट्टी में मिलते हुए देख चुकी हूँ।"[7] यह कथन इस बात को रेखांकित करता है कि यह समस्या नई नहीं है, बल्कि यह लंबे समय से चली आ रही एक सामाजिक बुराई है। नारी के सम्मान और उसके अधिकारों की रक्षा के लिए समाज में जागरूकता और सुधार की अत्यंत आवश्यकता है। जब तक समाज में इस तरह की कुप्रथाएँ और अन्यायपूर्ण व्यवस्थाएँ मौजूद रहेंगी, तब तक नारी जीवन में शांति और गरिमा का कोई स्थान नहीं होगा।

अंत में ज़िंदगी और हवा उस स्त्री के पास पहुँचती हैं, जिसने आज़ादी की लड़ाई में अपने स्त्रीत्व की आहुति दी थी। वेश्या को समाज में नारीत्व का कलंक माना जाता है, लेकिन यह कलंक वास्तव में उस समाज का है, जिसने उस महिला को इस स्थिति में धकेल दिया है। "आज़ादी के समय जो हादसे घटित हुए उनका सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा। उपन्यास में एक स्त्री यही कहती है, आज़ादी के समय

उसकी नींव में मेरी हड्डियाँ क्यों चिनी गईं? जब चारों ओर खुशी के चिराग जल रहे थे, उस वक्त मेरी इज्जत और मेरी आबरू के पल्ले को आग क्यों लगी? फिर उस स्त्री को कोई नहीं पहचानना चाहता, न माता-पिता, न धर्म, न देश की मिट्टी।"[8] यह वेदना हजारों स्त्रियों की है, जिनकी इज्जत लूटी गई। आबरू तार-तार हो गई। उसपर भी उनका दुर्भाग्य कम नहीं हुआ वे गर्भवती भी हुईं और ऐसी संतान को जन्म दिया, जिसके पिता का पता न हो। यह स्त्री-जीवन का अभिशाप ही है। विभाजन की पाशविकता की शिकार यह नारी वेश्या बन जाती है। किंतु वह क्या करे? जिस देश की आज़ादी के नाम पर उसका स्त्रीत्व लूटा गया, उस देश की मिट्टी अब उसे नहीं पहचानती, न माता-पिता उसे स्वीकार करते हैं और न ही धर्म उसे अपनाता है, जिसके नाम पर वह टूट गई। वह नारी, जिसने देश की आज़ादी के लिए बलिदान दिया, अब उसी देश की मिट्टी में अजनबी बन गई है। यह सवाल उठता है कि समाज कब और कैसे जबरदस्ती और मन की इच्छा के बीच अंतर करना सीखेगा?

अंत में ज़िंदगी और हवा ने देखा कि एक चट्टान की दरार में से कुछ पत्तियाँ चट्टान की छाती पर खेल रही थीं। यह देखकर हवा बोली, इन पत्तियों का बीज जाने कब से इस छोटी-सी दरार में आ पड़ा था। वह इतनी बड़ी चट्टान को देखकर घबराया होगा कि अब तो हारना होगा, मिटना होगा, लेकिन फिर भी उसमें कुछ था, जो चुपचाप इस पत्थर की ओट में बैठा दो बूंद पानी के लिए आसमान की ओर देखता रहा। "तब ज़िंदगी बोली, ऐसी जगह ले चलो जहाँ इस पत्थर की डिबिया में एक पत्ती पनपती हुई दिख जाए।"[9] यह संवाद नारी को जागरूक करने के लिए प्रेरणादायक है। उसके भीतर इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह चट्टानों के बीच भी पनप सके। अमृता प्रीतम स्वयं ऐसे अनुभवों से गुजर चुकी हैं, इसलिए उनकी लेखनी में इतनी ताकत और मिठास है कि पाठक उसमें पूरी तरह से खो जाता है। लेखिका ने अपने जीवन के अनुभवों और ज़िंदगी के अर्थ को कला और लेखन के माध्यम से व्यक्त किया है। वह नारी जीवन के संघर्ष, दर्द, और संवेदनाओं को समझती हैं और उन्हें रंगों और शब्दों में ढाल देती हैं। यह नारी पूर्ण मानवता की प्रतीक है, जिसने अपनी रचनात्मकता और सृजनशीलता से अपने जीवन को नया अर्थ और उद्देश्य दिया है।

निष्कर्षतः अमृता प्रीतम का उपन्यास उनके हस्ताक्षर अपने प्रतीकात्मक और गहन विचारों के माध्यम से समाज में नारी की स्थिति और उसके प्रति किए जा रहे अत्याचारों को उजागर करता है। यह उपन्यास नारी जीवन की कठिनाइयों, समाज की कुरीतियों, और रचनात्मकता की शक्ति पर गहन विचार करता है। अमृता जी ने इसमें नारी की पीड़ा को एक अद्वितीय प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, जो पाठकों को नारी के संघर्ष और उसकी स्थिति पर गंभीरता से सोचने पर मजबूर करता है। 'हस्ताक्षर' शब्द यहाँ नारी के व्यक्तिगत अनुभवों, उसकी पहचान, और उसकी सामाजिक स्थिति का प्रतीक है। 'उनके हस्ताक्षर' शीर्षक न केवल उपन्यास के अंदरूनी संदेश को उजागर करता है बल्कि यह नारी के संघर्ष और उसकी अस्मिता की महत्वपूर्ण व्याख्या भी प्रस्तुत करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मेरे साक्षात्कार, अमृता प्रीतम, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 1994, भूमिका
2. द्रौपदी से द्रौपदी तक, सं. इमरोज, राजपाल एन्ड सन्स, प्रथम संस्करण -1998, पृ. 144
3. मेरे साक्षात्कार, अमृता प्रीतम, किताबघर प्रकाशन प्रथम संस्करण -1994, पृ - 4 -5
4. वही, पृ 10
5. नयी नारी, रामवृक्ष बेनीपुरी, राजपाल एडन्स, पृ.5
6. मेरे साक्षात्कार, अमृता प्रीतम, किताबघर प्रकाशन , प्रथम संस्करण -1994, पृ -13
7. वही, पृ -18
8. वही, पृ 23
9. वही, पृ 28

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्षा,
हिन्दी विभाग, कण्णूर विश्वविद्यालय, केरल

सप्तक की कवयित्रियों के काव्य में स्त्री दृष्टि

डॉ. ए.के.बिंदु

ऐसा कुछ तो है,जिसे हम एक महिला का दृष्टिकोण कह सकते हैं,एक ऐसा दृष्टिकोण जो सदियों से एक अलग,एक ठोस रूप में पहचाना जा सकता है। 'द फीमेल इमेजिनेशन' की लेखिका 'पेट्रीशिया मेयेर स्पाक्स'का कथन यह ज़ाहिर करता है कि सभ्यता के विकास से ही दोयम दर्जे की पहचान से संबन्धित इतिहास स्त्रियों के साथ जुड़ा हुआ है। साहित्य में यह स्त्री दृष्टि धीरे-धीरे लगातार विकसित हुई। इसकी शुरुआत कविता से ही हुई। स्त्री स्वतन्त्रता और स्त्री सशक्तीकरण की अवधारणा आधुनिकता के नाम पर एक सामाजिक, आर्थिक,धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन है। आधुनिक मनुष्य की संवेदना है आधुनिकता। स्त्री का इतिहास जितना पुराना रहा है,उतना ही उसकी दासता और शोषण का इतिहास भी है। इस त्रासद जीवन से मुक्ति पाने के लिए स्त्री निरंतर प्रयास करती रही है। प्रसिद्ध विचारक एलाइन षोवोल्टर ने अपनी पुस्तक 'द न्यू' फेमिनिस्ट क्रिटिसिज़्म में लिखा है- सदियों से नारी अंधकार में रही है। वे आपस में नहीं जानती। जब नारियाँ लिखती हैं तो इसी अंधेरे का अनुवाद करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिककाल स्त्री पहचान का लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करता है।उसके बाद संभवतः 'थेरी गाथा' स्त्री लेखन की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसे सुमन राजे प्रथम भारतीय नवजागरण की संज्ञा देती है। मध्ययुगीन साहित्य में कोई कछु कहे मन लागा,मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरों न कोई कहकर नारी मुक्तिसंघर्ष की सशक्तवक्ता बनकर मीराबाई आई। उनका जीवन और साहित्य संघर्ष का रचनात्मक आगाज़ है। सुभद्राकुमारी चौहान ने स्त्रीवादी सैद्धांतिकी नहीं रची,उनका स्वयं का जीवन ही स्त्रियों के लिए संदेश बना। 'तोड़ दो क्षितिज,देख लूँ उस ओर क्या है इसमें स्त्री मुक्ति का सशक्त स्वर गूंज उठता है। हमें न किसी पर जय चाहिए,न प्रभुता,न किसी का प्रभुत्व,केवल अपना वह स्थान,वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं परंतु जिसके बिना हम समाज का उपयोगी भाग बन नहीं सकेंगी।"[1] ऐसा कहकर स्त्रियों को लौह शृंखलाएँ तोड़कर मुक्त होने का आह्वान महादेवी वर्मा ने दिया। साहित्य में स्त्री दृष्टि निजी मुक्ति की अपेक्षा सामूहिक मुक्ति का आख्यान रचती है। पूरी मानवता को अपने वृत्त में समेट लेती है।

मध्यकालीन श्रद्धा,आस्था और विश्वास की जगह तर्क, विवेक और विचार के साथ आधुनिकता का आविर्भाव हुआ ।इसके फलस्वरूप आधुनिक हिन्दी कविता में नए भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्पविधानों का अन्वेषण किया गया। स्त्री की स्वतंत्र चेतना की एक नई लहर प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान पूरे देश में आई। 1940 के दशक तक भारतीय भाषाओं में छपनेवाली सुधा, माधुरी, हंस, चाँद, जागरण जैसी पत्र-पत्रिकाओं मैं स्त्रियों की पारिवारिक गुलामी, धार्मिक रूढ़ियाँ,पुरुष वर्चस्व के विविध रूप, जैसे विषयों पर स्त्री रचनाकारों के लेख लगातार छापते थे। स्त्री लेखन में स्त्री अनुभव,स्त्री स्वर एवं स्त्री दृष्टि की खास पहचान है। आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों की लेखन प्रवृत्तियों के माध्यम से स्पष्ट है कि यह आधी आबादी के लिए आधी आबादी की चुनौती है। सुमन राजे के शब्दों में- "अब औरत किसी आदमी के नाम से जुड़ी ज़मीन नहीं,/उसकी ज़िंदगी सिर्फ उसकी है-यही उसके जीवन का मूलमंत्र है/हथियार के बल पर और कब तक होगी सभ्यता की खरीद-बिक्री।/असमानता की जटा उधेड़कर नारी खोज रही है समता का सूत,/अब वह समझ गई है कि उसका जीवन सिर्फ उसी का है, उसी के लिए है"[2]

साहित्य के इतिहास को एक नया मोड प्रदान कर सन 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में तारसप्तक का प्रकाशन हुआ। नवीन जीवनबोध की पृष्टभूमि पर आधारित कविताएँ इसमें शामिल थी। साथ ही इसमें यथार्थ को देखने-परखने की अंतःदृष्टि भी है। तारसप्तक के 28 कवियों की शृंखला में तीन लेखिकाएँ शामिल हुई हैं। सन 1951 में प्रकाशित दूसरे सप्तक की शकुंत माथुर, 1959 में प्रकाशित तीसरे सप्तक की कीर्ति चौधरी और 1979 में प्रकाशित चौथे सप्तक की सुमन राजे। अपनी विशिष्ट पहचान दर्ज कर काल और परिवेश के अनुसार इनका स्वर कविता में उभर आए। अनुभव का एक नया संसार इनकी रचनाओं में उद्घाटित होता है। उनकी कविताओं में अनुभव का नया संसार,उनके जीवन का सच,अनुभूति और विचारधारा का अद्भुत मिलन देखा जा सकता है।

दूसरे सप्तक के वक्तव्य में शकुंत माथुर ने यों कहा है कि काव्य रचना मैंने अपने ही आपको संतुष्ट करने के लिए की थी-एकदम स्वांतः सुखाय। किन्तु अपने जीवन में स्वाधीनता की लड़ाई को निकट से देखने से जो आग मन में थी वही आगे बढने के लिए प्रेरित करती रही। यही कारण है कि स्वांतःसुखाय रचनाएँ बाद में सामाजिक प्रक्रिया के रूप में मुखरित हो उठी। उन्होंने आधुनिक भारतीय जीवन को केंद्र में रखकर बृहतर सामाजिक यथार्थ,तत्कालीन राजनीतिक चेतना,वास्तविक जीवन के आनंद, संघर्ष,दुख, और सुख जैसे मनोभावों को नारी मन की सहजता के साथ मार्मिक वाणी दी है। उनकी भाषा और बिम्ब सीधे दैनिक अनुभवों से उठाए हुए हैं, इसलिए उनका कथ्य तथा शैली इतनी सरल, सहज,अछूती और मौलिक रही है । वे चाँदिनी चूनर, अभी और कुछ , लहर नहीं टूटेगी जैसे काव्य संग्रहों द्वारा जीवन की यथार्थ मानवीय स्थितियों और विडंबनाओं को गहनता और समग्रता से अभिव्यक्ति दी हैं।

कीर्ति चौधरी कविता के मुकम्मल माहौल में पैदा हुई थी। खुले हुए आसमान के नीचे इनका एकमात्र कविता संग्रह है जिसमें सप्तक की कविताएँ भी संकलित हैं। इनके काव्य की विशेषता यह है कि इनमें कुंठा,निराशा के स्थान पर भविष्य के प्रति आशा और विश्वास के स्वर ध्वनित हुए हैं। उनकी कविता में प्रतीकों और बिंबों का काफी प्रयोग मिलता है। केदारनाथ सिंह के अनुसार महादेवी वर्मा के बाद हिन्दी कविता में जो एक रिक्तता आई थी,उसे कीर्ति अपने मौलिक लेखन से पाटती है। उनकी कविता एक नए साँचे में थी जिसकी बनावट अलग थी। उसमें एक ताज़गी थी और अपनी रचनाओं के ताल में उनके पास एक खास तरह का स्त्री सुलभ संवेदनात्मक ढांचा था जो उनके समय में किसी और के पास नहीं था। उन्होंने अपने समय में अपनी रचनात्मक सृजन से अपनी अमिट छाप तैयार कर ली है जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। उनकी दृष्टि में स्त्री मुक्ति का संघर्ष एवं स्त्री अस्मिता समय की मांग है।

हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास लिखकर नारी को उसकी अस्तित्व की तलाश करने में सुमन राजे ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सप्तक के कवियों के मध्य और समकालीन कवियों के साथ उनकी पहचान है। उनके रचना संसार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कहीं भी अपने को दोहराया नहीं है। पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा पर आधारित साहित्य के इतिहास को स्त्री दृष्टि से देखने-परखने की नई इतिहास दृष्टि को सुमन राजे ने विकसित किया। हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास लेखिका की खास दृष्टि है। इसलिए पहली बार वैदिक ऋषिकाएँ, बौद्ध थेरियाँ, प्राकृत गाथाकार, संस्कृत कवयित्रियों और नव्य भारतीय भाषाओं की भक्तसंत,रानियाँ और वेश्याओं के दर्द की एक रेखा पर खड़ी होकर अपनी और संसार की बात करती हुई सुनी जा सकती है। सपना और लाशघर,उगे हुए हाथों के जंगल, यात्रादंश, एरका, इक्कीसवीं सदी का गीत जैसे काव्य संग्रहों की रचयिता होने के साथ ही वे एक दार्शनिक, इतिहासकार एवं समाजसुधारक भी थीं हिन्दी साहित्य के 'स्त्री' लेखन संबंधी पूर्वाग्रहों को तोड़कर, प्रचलित मिथकों को बदलकर एक नए रचनाकर्म का आविष्कार करने

में ये तीनों लेखिकाएँ काफी सक्षम हुई हैं। आधुनिकताबोध से उपजी उनकी स्त्री दृष्टि समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक संरचना के चंगुल से स्त्री की स्वतंत्रता,अस्मिता एवं चेतना को पुनःस्थापित करती है। साथ ही अन्य हाशियेकृतों के लिए आवाज़ बनना भी है। आत्मकेंद्रित नारी का आत्मसंघर्ष, प्रकृति और स्त्री का अंतर्संबंध,अन्य हाशियेकृतों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण,नई भाषा का गठन ये सब उनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं।

आत्मकेंद्रित नारी का आत्मसंघर्ष : शकुंत माथुर के काव्य में स्व की अभिव्यक्ति के साथ नारी सुलभ कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति उनकी संवेदनशीलता को दर्शाती है। उनकी अधिकांश कविताएँ क्षण या क्षणों के मूड्स की कविताएँ हैं,साथ ही सूखी ग्रहस्थिन की अनुभूतियों को लेकर लिखी गई भी हैं। उनका मानना है कि नारी का सुख केवल उसकी घर-गृहस्थी तक सीमित नहीं है। गृहस्थी के साज संवार के बाद भी वह पूरा संतोष नहीं कर पाती,उसे लगता है जैसे वह अपूर्ण है। वह एक सामाजिक अभाव महसूस करती है। सब प्रकार के सुख होते हुए भी इस अभाव की पूर्ति उसे काव्य से मिली। 'नारी का संदर्भ' कविता में इस मानसिक स्थिति का वर्णन यों किया है - "अपने खुले हुए मार्ग स्वयं बंदकर/अपने ही को कोसती रहती हूँ/और चहार दिवारी में/होली सी जलती रहती हूँ'।'[3]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जकड़ें मजबूत है।अतः स्त्रियाँ खुद को निस्सहाय महसूस करती है। उनकी पैरों की बेड़ियाँ उन्हें पीछे की ओर खींचती है। जैसे- "पर बंधन है जो खुलता नहीं।"[4]

सृजनात्मक क्षेत्र में स्वतन्त्रता का अभाव महसूस करनेवाली नारियाँ इससे मुक्ति चाहती हैं। जब अपनी अस्मिता के लिए कलम अपनाया तो वहाँ भी पाबंदी लगाने की कोशिश जारी थी। वह जितना चीखना चाहती थी,उसके होंठ उतने ही सिले रख दिये गए ऐसे में कवयित्रि सुमन राजे सवाल करती है- "आखिर नारी होकर नारी होने को कब तक सहूँ/ मेरे लिए कविताएँ लिखना निहायत ज़रूरी है।"[5]

अस्तित्व के संकट को यहाँ शब्दबद्ध किया है। तारसप्तकीय कवयित्रियों का जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण है। युगीन वातावरण एवं जीवन की विसंगतियों का प्रभाव इस जीवनदृष्टि के स्थायन मैं महत्वपूर्ण स्थान रखता रखता है। जीवन के प्रति इनकी दृष्टि आशाभरी है। उनमें दृढ़ विश्वास है। जैसे - "करूँगी प्रतीक्षा अभी।/दृष्टि उस सुंदर भविष्य पर टिकाकर /फिर करूँगी काम।

ऐसी आशाभरी सपने इन्हें जीने की प्रेरणा देती है। 'यात्रादंश' में इसका ज़िक्र यों किया है- "कभी-कभी सपने/सत्य से ज़्यादा अहमियत रखते हैं/इसलिए यह जरूरी है /कि हम सपने देखें/फिर उन्हें सच्चाई का आकार दें।"[6] अपने सपने को साकार बनाने के लिए संघर्ष करने का आह्वान देती है कीर्ति चौधरी। वह कहती है- "जो भी हो संघर्षो की बात तो ठीक है,/ बढ़नेवालों के लिए यही तो एक लीक है"[7] पुरुष वर्चस्ववादी शर्तो पर जीने के लिए सदियों से अभिशप्त नारी इस बंधन से मुक्ति चाहती है।प्रेम तथा उसके समस्त अर्थ को अस्वीकार कर उसकी निरर्थकता पर सचेत हो जाती है। शकुंत माथुर उसकी अभिव्यक्ति की है- "शब्दों का खेल जान गई। तुम बोलो कहीं कुछ भी/इससे पहिले ही/तुम्हारे मन को पूरा नाप गई।[8]

स्त्री अपने और सम्पूर्ण जाति की पीड़ा उसे भीतर तक पिरोये और इस पीड़ा के बलबूते पर अपने अस्तित्व को तलाशने की ओर अग्रसित हो सकें। जहाँ-जहाँ स्त्री ने दासता के अभिशाप को झेला है,उसके अधिकारों का हनन हुआ है वहाँ स्त्रियाँ मुक्ति की आवाज़ लेकर प्रतिरोध के लिए खड़ी हुई। नारी अपने परिवेश के घात-प्रतिघातों और पुरुष सत्ता के द्वारा निर्धारित नियमावली में जीवन जीने के लिए विवश होती रही है। ऐसी बिडंबना भरे माहौल में कवयित्रियों ने लेखनी चलायी। प्रतिरोध के स्वर बुलंद

हुए। "आखिर मैं ने तुम्हें पहचान लिया है/इस अंतिम पहचान के बाद/बचाव का कोई रास्ता/शेष नहीं रहता।"[9]

स्वत्व को पहचाननेवाली नारियाँ अपने संघर्ष को बनाए रखती हैं। स्त्री के स्वत्व को लेकर सवाल उठते समय लेखिका जवाब देती है- "मैं न सूरज हूँ/ न ईश्वर/न हो सकती हूँ/मैंसिर्फ आदमी हूँ।"[10] ये पंक्तियाँ कहीं न कहीं यह आभास दिला रही है कि वे लेखन में मुक्ति तलाश रही हैं। साथ ही समूची नारी जाति की मुक्ति की कामना करती है। सुमन राजे पूछ्ती है -"मेरे ये हाथ/अनंत काल तक यूँ ही बंधे रहेंगे?"[11]

कीर्ति चौधरी की सीमारेखा कविता में लेखिका स्त्री के लिए बनाई समाज की इन सीमा रेखाओं को लांघने का आह्वान करती है। अपने समय में महादेवी वर्मा ने अपने लेखन में पितृसत्ता और सामाजिक व्यवस्था पर अनेक सवाल उठाए थे। उसके बाद कीर्ति चौधरी ने भी स्त्रियों को लेकर जो आधुनिक स्त्री की सोच को उजागर किया है वह महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह एक ऐसे समय की रचना है जहां रामायण और महाभारत को आदर्श मानकर स्त्रियों को उन्हीं बंधनों में जकड़कर रखा जाता था। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की चाल है जो हम स्त्रियों को अपनी कैद और अपने दायरे में रखने के लिए ही सीमारेखा खींचती आ रही है। "मंदिर में ज्योतित /उजाले का प्रण करती/कंपित निर्धूम शिखा-सी/यह अनिमेष लगन /किसे यहाँ देनी है /कौन वहाँ आतुर है? किसे यहाँ देनी है/ऊँचा ललाट रखने की वह अग्नि की परीक्षा?"[12]

यह कविता प्रश्न उठाती है कि जिस सामाजिक व्यवस्था में हम रहते हैं उसमें केवल स्त्रियों के लिए ही सीमा निर्धारित क्यों की गायी है और स्त्रियों को ही इस व्यवस्था के बंधन में क्यों बांधा गया है? वे अपने संघर्ष को कायम रखती है। इसलिए समकालीन समय नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच निर्भय,निस्संग मुस्कराती चम्पा से हमारा परिचय करता है।

आधुनिकता के दायरे में स्त्री स्वतन्त्रता की कोई सीमा नहीं दिखाई पड़ती। वे रूढ़ियों और अंधविश्वासों के घेरों को तोड़ रही है। वे पारिवारिक और सामाजिक परम्पराओं व संस्कारों को तोड़ने में हिचकती नहीं है। आत्मकेंद्रित होना आज आधुनिक होना है। शकुंत माथुर यों कहती है- "मकड़ी की तरह उन स्वयं निर्मित जालों को/जो अपने उपर बुन लिए हैं /तार तार कर दूँ उन सुशोभित/चिथड़ों को/ अब तक जो मुझ पर पॉलिश किए गए हैं।"[13]

इन कवयित्रियों ने अपने काव्य में स्वानुभूति के माध्यम से स्त्री की व्यथा कथा को सहज ही कह दिया है। अधिकतर अनुभूतियाँ घर से जुड़ी हैं तथा जिन कवयित्रियों ने घर से बाहर कदम रखा उन्होंने नए एवं पुराने मूल्यों के बीच घर,बाहर एवं भीतरी संसार को रचने का प्रयास किया है। इनकी अपनी स्वानुभूति समस्त नारी जगत की अनुभूति का प्रतिनिधित्व करती है। इनकी संवेदना और पीड़ा समस्त नारियों की पीड़ा और संवेदना बन जाती है।

प्रकृती और स्त्री का अंतर्संबंध : परंपरागत प्रकृति विधानों को अपनाकर कवयित्रियों ने एक ओर प्रकृति के साथ आत्मसंबंध स्थापित किया है तो दूसरी ओर प्रकृति को बचाने की कोशिश कर रही हैं। प्राकृतिक विपदाओं को देखकर संवेदनशील कवयित्रियाँ सजग हो जाती हैं। कीर्ति चौधरी यों ज़ाहिर करती है - "ज़िंदगी को ऐसा न बनाओ/कि लगे बोझा ढ़ोना। / दुनिया में बड़ी नियामतें हैं मित्र /ज़रा उठो,हौसरा करो न!/थोड़ा हाथ-पैर चलाओ /इन्हीं पैरों की छाप से / निर्झर फूटेंगे/इन्हीं हाथों से तो/उगेगा सोना।"[14]

प्रकृति के प्रति समर्पण मनोभाव रखनेवाली स्त्री किसी भी हालत में पृथ्वी को बचाने का आग्रह भी करती है। प्रकृति से गहरे सरोकार रखनेवाली कवयित्रि है कीर्ति चौधरी। वे कहती हैं-"मैं बादल सा उमड़ूँगा /मरुस्थल पर छा जाऊँगा/मैं फसलों सा उग/बंजर धरती पर लहराऊँगा।/चट्टानों पर चढ़ /सूरज को आवाज़ लगाऊँगा/हिरणों का हाथ पकड़/अंधियारी राह बताऊँगा।"[15]

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा में समूची मानव जाती का कल्याण है। प्रकृति के प्रति स्त्री की संवेदना उसके आत्मसंबंध को दर्शाती है। कवयित्रियों ने अपने काव्य में प्रकृति की प्रतिष्ठा के साथ मानवीय संवेदना का भी हमेशा ध्यान रखा है ।वे प्रकृति के साथ मिल-जुलकर एवं प्रकृति का सहारा बनकर जीना चाहती हैं।

अन्य हाशियेकृतों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण

शोषकों के प्रति आक्रोश उनकी कविताओं में प्रकट है। उनकी कविताओं में समाज की दीन-दलित नंगी भूखी मानवता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। वैयक्तिक वेदना को सामाजिक आयाम प्रदान करने में उनकी कविताएँ सफल हुई हैं। पश्चिमी सभ्यता एवं उसके फलस्वरूप उपजे आत्मकेंद्रित व्यक्ति की विभिन्न झांकियों को दर्शाया है। स्त्री अपनी जययात्रा में किसी को चोट नहीं पहुँचाना चाहती और अपने जैसे हाशियेकृतों को छोड़ना भी नहीं चाहती। वह सबको अपने साथ लेकर चलना चाहती है। "किसी को भी न तोड़ सकती हूँ / न छोड़ सकती हूँ।"[16]

कोचवान, रिक्षाचालक और गाड़ीवान तक सीमित कवियों की दुनिया में कोचवान की चाबुक की मार को अपनी दुर्बल पीठ पर सहनेवाले घोड़े की पीड़ा का चित्रण शकुंत माथुर ने यों किया है- "धूम धूम जो बलखाती थी/ सर्प सरीखी बेदर्दी से पड़ती थी/ दुर्बल खोदे की गरम पीठ पर" युद्ध की विभीषिकाओं का चित्रण,भूख से पीड़ित आम आदमी ,महानगरीय जीवन में होनेवाले अजनबीपन,आधुनिक मनुष्य का संघर्ष, राजनीतिक खोखलेपन जैसे कई मुद्दे उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ते हैं। यह उनकी खास दृष्टि का परिणाम है। व्यक्तिगत अनुभूतियों के माध्यम से इन्होंने जनसामान्य की अनुभूतियों को भी शब्द दे दिये हैं।

नई भाषा का गठन : प्रतिदिन के वातावरण के सीधे-सादे उपमान और बिम्बों का असाधारण प्रयोग इन कवयित्रियों की काव्यभाषा को नवीन बनाता है । सरल बोलचाल के शब्दों में भी इतना सुघर,मधुर कवित्व छिपा रहता है। शकुंत माथुर नई कविता की पहली कवयित्रि है जिन्होंने सामाजिक कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए सबसे पहले घरेलू, सहज जनभाषा में छंद- मुक्त का प्रयोग किया। तत्सम,उर्दू,अँग्रेजी और देशज शोब्दों के द्वारा सहज और सरल शैली अपनाई हैं। इनकी भाषा में खुलापन है। बिंबों और प्रतीकों के द्वारा सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्तिइन्होंने की है। आधुनिक युग के संघर्ष,घुटन,विवशता और खोखलेपन से भरे जीवन की अभिव्यक्ति ऐसे नवीन बिम्बों के द्वारा चित्रित किया है। बिंबगत नवीन प्रयोगों की दृष्टि से इनका काव्य महत्वपूर्ण है। "बीन है,सितार है,वायलिन है /पर ज़िंदगी/ खोखला भोंपू है/ सायरन है।"

शब्द और भाव के पारस्परिक संयोग से उपजी भाषा इनकी खासियत है। वे एक ही भावबोध की समानांतरता की कविताएँ होने के साथ परिपक्व नज़र आती हैं। सामाजिक/राजनीतिक/स्त्री शोषण जैसी विभिन्न परिस्थितियों को कवयित्रियों ने बिंबों के द्वारा दर्शाया है। कवयित्रियों ने अपनी व्यक्ति चेतना को समष्टि चेतना के साथ जोड़ने की आकांक्षा रखी है। यह उनकी व्यापक दृष्टि एवं युग की मांग रही है।

शकुंत माथुर और कीर्ति चौधरी की दृष्टि सहज और स्वाभाविक है जो अपने आसपास के वातावरण से अत्यधिक प्रभावित हैं। सीमा रेखा को लांघने का प्रस्ताव कीर्ति चौधरी करती है तो सुमन राजे के काव्य में नारी चेतना विस्तुत फ़लक समेटे हुए हैं। सुमन राजे दुनिया की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं। समाज की विसंगतियों तथा विडंबनाओं एवं नारी जीवन की समस्याओं को खोजने तथा उन्हें दूर करने का प्रयास करती नज़र आती है। उसने कविता की निरंतरता को बनाए रखा और अपनी पहचान भी बनाई। इतिहासबोध जो उनकी रचना को जटिल बनाता है दूसरा लोकबोध है जो उनकी भाषा को रचनात्मक बनाता है। अतः सप्तक की कवयित्रियों के काव्य में उनकी नारी दृष्टि पूर्ण रूप से दिखाई पड़ती है जो अत्यंत सहज,स्वाभाविक तथा प्रभावशाली है ।

निष्कर्ष : सप्तक की कवयित्रियों के अलावा आधुनिक स्त्री कविताओं में अस्मिता की तलाश,पहचान,स्त्री मुक्तिसंघर्ष के विभिन्न आयाम रमासिंह, किरण जैन,इन्दु जैन,अमृता भारती आदि से होकर स्नेहमयी चौधरी,सुनीता जैन, मनिका मोहिनी जैसी कवयित्रियों से विकसित होकर समकालीन दौर पर अस्मिता विमर्श का एक सशक्त ढांचा तैयार होकर खड़ा होता है। अस्मितावादी स्त्री आंदोलन की विचार पीठिका इस प्रकार फूटकर निकलती है। तारसप्तक के दौर में कीर्ति चौधरी ने स्त्री के जीवन पर लगी सीमारेखा का उल्लेख किया है,जो केवल स्त्रियों के लिए ही परंपरा से चली आ रही है जबकि पुरुषों के लिए कोई सीमारेखा नहीं है। नवें दशक की स्त्रीवादी कवयित्रि कात्यायनी ने 'सात भाइयों के बीच चम्पा' में स्त्री जीवन की विभिन्न दुखभरी बिडम्बनाओं ,उनकी जिजीविषा,उनके अस्तित्व,और जीवन को बचाने की कोशिश लोककथाओं के आधार पर की है। कात्यायनी,अनामिका,निर्मला पुतुल,सविता सिंह आदि की कविताएँ हमें सोचने के लिए मजबूर बनाती है कि स्त्रियों की स्थितियों में तब से लेकर अब तक कितना परिवर्तन आया है और युगीन परिवेश के अनुरूप ये कवयित्रियाँ स्त्री मन के उद्वेलन को कैसे प्रस्तुत किया है।देरिदा ने पाठ में अनुपस्थिति की तलाश की बात कही है। इसकी तलाश वर्तमान संदर्भ में कई विमर्शो को खड़ा कर दिया। समकालीन दौर में जहाँ स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं वहीं स्त्री लेखन भी इस जागरूकता को आगे बढ़ाने के लिए संकल्पित दिखाई पड़ती है। सप्तक की कवयित्रियों ने अपने काव्य में नारी चेतना और वेदना को युग्म रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। क्योंकि इनका संबंध स्त्री से जुड़े हुए हैं। मानव और मानवेतर बहुआयामी चेतनाओं को समेट लेने में इनकी कविताएँ सक्षम बन गईं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. महादेवी वर्मा-शृंखला की कड़ियाँ-पृ.21
2. सुमन राजे-हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास-पृ.309
3. पवन माथुर(सं)-शकुंत माथुर कविता समग्र -पृ.267
4. शकुंत माथुर -अभी और कुछ .पृ.54
5. सुमन राजे -उगे हुए हाथों के जंगल-पृ.86
6. सुमन राजे-यात्रादंश-पृ.57
7. कीर्ति चौधरी कविताएँ -पृ.67
8. शकुंत माथुर-.लहरें नहीं टूटेगी पृ.9
9. सुमन राजे-उगे हुए हाथों के जंगल-पृ.51
10. सुमन राजे-यात्रादंश-पृ.31
11. उगे हुए हाथों के जंगल-पृ.49
12. कीर्ति चौधरी कविताएँ पृ.-24
13. शकुंत माथुर -लहर नहीं टूटेगी-पृ.31
14. कीर्ति चौधरी-तीसरा सप्तक–पृ.56
15. कीर्ति चौधरी कविताएँ-पृ.90
16. शकुंत माथुर-अभी और कुछ-पृ.9

सह आचार्या, हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोच्ची, केरल

संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में किसान एवं आदिवासी संघर्ष

अंजना.ए.एस

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नई भावभूमि को लेकर उभरे उपन्यासकारों में संजीव अपनी अलग पहचान रखते हैं। अछूते संदर्भो की कलात्मक प्रस्तुति उन्होंने उपन्सास विधा में की है। आदिवासी, दलित, गरीब और मज़दूरों की समस्याओं को समझकर ही संजीव ने उनके यथार्थ को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। 'फाँस' उपन्यास संजीव का एक श्रेष्ठ उपन्यास है। विदर्भ के छोटे-छोटे गाँवों का चित्रण 'फाँस' उपन्यास में मिलता है। विदर्भ के किसानों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं को संजीव जी ने अभिव्यक्त किया है। 2020 में प्रकाशित 'फाँस' में बयालीस छोटे-छोटे अध्यायों में कथावस्तु विभक्त है। अलग-अलग होकर भी इस अध्यायों सबसे जुडा हुआ है। बनगाँव, गढ़चिरौली, चन्द्रपुर, यवतमाल, मेंडालेखा, अमला, इंजला, बाँसोड़ा, धानोरा, साईपुर और नागौरा आदि गाँवों का चित्रण इन अध्यायों में मिलता है। 'बनगाँव' के शीबू उर्फ शिवशंकर और शकुन उर्फ शकुंतला के परिवार की दर्दभरी कहानी से कथा प्रारंभ होता है। इस गाँव में अनेक जातियाँ पनप रही हैं। सभी लोग खेती करते हैं। मराठों, महारों, चमारों, माँग, मछुआरों, कुनबियों और आदिवासियों की मिश्रित आबादी इनमें है। ऊँच-नीच और छुआछूत गाँव में लोग मानते हैं। संजीव के शब्दों में 'बनगाँव' के पूरब देखे तो जंगल शुरु होने लगता है। पश्चिम देखे तो पठार। कभी-कभी तो पूरब में पानी पड रह होता है और पश्चिम में नहीं सो बारिश से बचने के लिए बकरियाँ, गाय-भैंस, लोग-बाग भागकर पश्चिम आ खड़े होते हैं। वैसे बारिश का क्या है। बरसी तो बरसी नहीं बरसी तो नहीं बरसी। "बनगाँव गाँव पहाडी की ढलान पर बसा हुआ है। चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते ज़मीन पहाडी पर ही पहुँचकर दम लेती है। जहाँ सूरज शाम को पहुँचकर थके किसान की तरह पसीना पोंछते हुए पीछे मुड़कर अपने खेतों को देखता है और पूरी घाटी सुनहरी हो उठती है। बारिश हुई तो ऊपर का पानी पहाड़ी से ढलानों पर रिस-रिसकर नीचे उतरता है।"[1]

'कोबला' आदिवासी जंगलों में भटकती एक जाति है। जंगल आदिवासी का जीवन होता है। अपनी झोंपड़ियों को बनाने के लिए वह वृक्ष के पत्तों का इस्तेमाल करते हैं। वे लोग वृक्षों को भगवान मानते हैं। इसलिए कोबला आदिवासी पेडों की पूजा भी करते हैं। जंगलों की ज़मीनों में खेती करके फसलें खाने के लिए संजोये रखते हैं। प्रकृति प्रेमी आदिवासियों का जीवन आज अंधकारमय बन गया है। जंगलों के साथ-साथ खतम होने लगा है। आर्थिक अभावों में व्यतीत करते उनके अभावग्रस्त जीवन का प्रभावशाली चित्रण फाँस उपन्यास में किया गया है। शकुन अपनी दोनों बेटियाँ सरस्वती एवं कलावती के साथ जंगल जाती है, गाँव के अन्य महिलाएँ भी जाती हैं। सभी अलग-अलग जगहों पर महुए ढूँढ़ने के लिए चले जाते हैं। शकुन कलावती से दूर तक मत जाना बताया, क्योंकि कोई भी जानवर आकर हमला कर सकता है। कलावती शकुन का कहना नहीं मानती। घने जंगल में अपने आप में मस्त होकर वह चली जाती है। सब कलावती को ढूँढ़ती है तो कहीं नहीं दिखती है। वह जंगल के बीच में कलावती फँस जाती है। वह उम्र में छोटी होने की कारण जंगलों के मामले मे उनको कुछ भी पता नहीं था। खुदाबख्श नामक सिपाही उन्हें पकडकर अपनी ओर खींचता है। कलावती को लगता है कोई जंगली जानवर ने उन्हें पकडा है। बाद में पता चलता है कि जानवर नहीं सिपाही है। शकुन आकर खुदाबख्श से छुडवाकर उसे घर ले जाती है। इस बात का पता चलने पर शीबू

शकुन को डाँटने लगते है। शकुन क्रोध से कहते हैं - "इसी जंगल से हमारे बाप दादे भी बाँस, मावा बेहर्रा और सखुआ के बीज लाते रहे। बेहरा केन और तेन्दु के पत्ते भी और अब जंगल सरकारी हो गया। अब हम छू भी नहीं सकते।"[2]

खुदाबख्श महुए चुनने के लिए आई हुई महिलाओं को धमकाता है। उन्होंने सबसे कह दिया कि जंगल से कुछ भी लाने का अधिकार नहीं जिसने भी चोरी करने की हिम्मत की। उसको दण्डित किया जाएगा और कैद खाने में भी धकेल दिया जाएगा। खुदाबख्श अपना कब्जा जमाना चाहता था ताकि सब लोग उनसे डर जायें। आदिवासियों का हक छीनने में सरकार सदा लगी हुई है। खुदाबख्श जैसे अनेक लोग हैं जो सरकार की चापलूसी करते हैं और अपना मुनाफा कमाते हैं। सत्ता ऐसे व्यक्तियों के हाथों में सौंपते हैं इसलिए आदिवासियों को जंगलों से अलग करने का षडयंत्र बनाते हैं। सरकार एवं खुदाबख्श जैसे लोग मिलकर जंगलों को काटकर बड़ी कम्पनियाँ बनाकर पर्यावरण बिगाड़ते हैं। आज आदिवासियों का जीवन अंधकारमय बन गया है। जंगलों के साथ-साथ उनका अस्तित्व भी आज खत्म होने लगा।

'फाँस' में शकुन के शब्दों में -"इसका तो पक्का फैसला करना होगा न? दूसरे गाँव के लोगों के साथ वन विभाग से बात करें बाँस बेचकर हम दो-चार पैसा कमाते हैं, मावा बेचकर भी, तन्दु के पत्ते और दूसरी चीज़ें बेचकर भी और यहाँ दाल-भात में मूसरचन्द बना हुआ है। उसे धूस दो तो चोरी चुपके काटो, नहीं तो छूने भी नहीं देगा। भगवान की धरती, भगवान के पेड और फिर बीच में ये भँडुआ कौन।"[3] सरकारी लोगों को शकुन कोसने लगती है। वन विभाग के अधिकारी भी आदिवासी लोगों का शोषण करते हैं। अपनी स्वार्थता के कारण आदिवासी लोगों को जंगलों की चीज़ों को छूने भी नहीं देते हैं। जंगलों में से जो प्राप्त वस्तुएँ बेचकर वन अधिकारी ज्यादा मुनाफा कमाते हैं। आम आदमी का उनके सामने कोई महत्व नहीं है।

आदिवासियों की ज़मीनें छीनकर आज बाँध-नहर, बड़ी बड़ी इमारतें, कॉलेनियाँ आदि बनवाते हैं। अपने साथ हुए अन्याय के खिलाफ आदिवासी आवाज उठाते हैं ये लोग सरकार से लड़ना चाहते हैं। किंतु कोई भी उनका वश चलानेवाला और भला चाहनेवाला आज मिलता नहीं है। सत्ताधिधारी लोग अपने अधिकारों के लिए लड़नेवाला आदिवासियों के पथ पर बाधा बनकर खडे हो जाते हैं। 'फाँस' उपन्यास में इसका खुला चित्रण हमको देख सकते हैं। अभावों में जीवन व्यतीत आदिवासियों को शिक्षा भोजन कपडे पानी आदि के लिए संघर्ष करते रहते हैं।

'फाँस' उपन्यास में आदिवासियों के संघर्ष का चित्रण मिलता है। कोबला आदिवासियों अन्याय के खिलाफ लड़ते हैं और न्याय पाते हैं। आदिवासी लोग अन्याय एवं अत्याचार को खत्म करना चाहते हैं। उनके पथ पर अनेक रुकावटें खड़ी होती हैंट उन्होंने डटकर सामने करने का प्रयास किया है। आदिवासी समाज का जीवन आज हिन्दी साहित्य का प्रमुख अंग हो गया है। आदिवासी रूपी उपेक्षित वर्ग के अनछुए पहलुओं का मार्मिक चित्रण संजीव ने 'फाँस' के ज़रिए किया गया है। नरकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त आदिवासी लोगों की संवेदना और आकांक्षाओं का चित्रण यथार्थ के धरातल पर उन्होंने किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संजीव- फाँस- पृ-सं- 9
2. वही- पृ-सं- 20
3. वही- पृ-सं- 22

सह लेखक

डॉ.अनूपा कृष्णन
असिस्टेंड प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज, केरल विश्वविद्यालय

शोध छात्र, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी कालेज, तिरुवनन्तपुरम
केरल विश्वविद्यालय

दांपत्य विघटन की मनोवैज्ञानिकता उषा प्रियंवदा की कहानियों में

डॉ.लेखा पी

उषा प्रियंवदा आधुनिककाल की प्रतिभा संपन्न बहुचर्चित महिला लेखिका है। उनकी कहानियों में आधुनिक स्त्री-पुरुष के परिवर्तित दृष्टिकोण मौजूद है। भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा दृष्टि और पाश्चात्य संस्कृति के प्रति प्रेम उनकी रचनाओं में विद्यमान है। पुरानी पीढी और नयी पीढ़ी की वैचारिक मित्रता उनकी कहानियों की विशेषता है। विभिन्न परिवेश के नारी की समस्याओं को लेकर उषाजी कथा रचना की है। स्त्री का परिवर्तित और आधुनिक दृष्टिकोण के साथ जीवनादर्श भी प्रस्तुत करने में उषाजी की कहानियाँ सक्षम हैं।

दाम्पत्य विघटन : दाम्पत्य जीवन की असफलता ही दाम्पत्य विघटन का कारण है। पति-पत्नी के बीच की अहं, संशय द्वन्द्व आदि इसके लिए प्रेरित शक्तियाँ हैं। बीमारी, आर्थिक समस्या, पति-पत्नी की चरित्र हीनता, पारिवारिक रहन-सहन में अन्तर आदि कई कारणों से दाम्पत्य जीवन विघटित होता है।

उषा प्रियंवदा की कई कहानियों में दांपत्य विघटन का चित्रण मौजूद है। मोहबंघ, जाले, कंटीली छांह, दो अंधेरे, दृष्टिदोष, वापसी, प्रतिध्वनियाँ, कितना बड़ा झूठ, ट्रिप, स्वीकृति, मान और हठ, झूठा दर्पण, सागर पार का संगीत आदि कहानियों में दांपत्य विघटन प्रस्तुत है। 'मोहबंघ' कहानी की नीलू अपने पति की उपेक्षा करके अन्य कार्यक्रमों में सदा मग्न रहती है। उसे अपने पति राजन पर कोई ध्यान नहीं। इसलिए राजन का कहना है "नीलू इतनी व्यस्त रहने लगी है कि मैं अक्सर बिलकुल अकेला रह जाता हूँ। मुझे लगता ही नहीं कि घर में मेरी पत्नी भी है।"[1] पत्नी के इस व्यवहार से दुःखी पति पत्नि की सहेली अचला के प्रति आकर्षित हो जाता है।

'जाले' कहानी में राजेश्वर और कौमुदी पति-पत्नि है। शादी के बाद बहुत जल्दी ही उन्हें पता चला कि व्यक्तिगत कार्यो में भी पत्नी का हस्तक्षेप होने लगा है। घर की पुरानी हालत का बदलाव सहन नहीं करता "अपने पुराने ढर्रे पर जीवन फ़िर से लौटा देने वह हर समय छटपटाते रहते। उनको लगता कि वह मकड़ी के जाले में घिरकर रह गये हैं, जिसके तार दार से बहुत सुकुमार, बहुत आकर्षक लगते हैं, पर एक बार उसमें फँस जाने के बाद निष्कृति की कोई आशा नहीं रहती।"[2] कंटीली - छाह के मास्टर साहब भी अपनी पत्नी के व्यवहार से वहुत दुःखी है। मास्टर की पत्नी हेडमास्टर होने के नाते मास्टरजी से अलग होकर, शहर में रहती थी। मास्टर जी के आसपास के लोगों को उस पर तरस आता है "मास्टर साहब को कौन सुख मिला? ब्याह हुआ फिर भी अकेले रहे। मैं तो सुनती रहती हूँ, रात-रात भर कराहते हैं, उठते हैं, कमरे में चक्कर लगने लगते हैं।"[3] अपनी पत्नी के स्नेह के अभाव में मास्टरजी कंपाउंडर की पत्नी से अनैतिक संबन्ध स्थापित करने देते हैं।

'सेक्स' शब्द द्वारा यौन-भाव का अर्थ सूचित होता है। काम शब्द यद्यपि सेक्स का सूचक है, तथापि काम का अर्थ कामना होने के कारण वह सेक्स से कुछ अधिक व्यापक अर्थ सूचित करता है। काम और सेक्स का अंतर एक तो यह है कि हमारे यहाँ काम धर्म से संबद्ध होने के कारण उसमें संयम और नियंत्रण निहित है, जबकि सेक्स इस प्रकार नियंत्रण से निरपेक्ष है।"[4] उषाजी ने इस नवीन सेक्स चेतना को अपने कथानकों का आधार मानते हुऐ कई स्तरों पर स्थायित किया है।

"आज काम विषयों की चर्चा रहस्यपूर्ण ढंग से तथा लुके-छिपे न होकर निःसंकोच तथा अन्य बातों की तरह साधारण खुले रूप से होती है।"[5] 'पुनरावृत्ति' कहानी में चिरंतन की छात्रा सैली ने खुले

मन से जो बातें अपने गुरु से कही इससे पता चलता है कि आज नारी में काम विषयक छुई-मुई की सिमटन नहीं रही है। उसने चिरंतन से निस्संकोच कहा कि "उस पूरी प्रक्रिया को हर क्षण महसूस करना चाहती हूँ। अब उन लोगों ने तीसरा वीर्यदाता ढूढा है, लंबा और मेधावी... क्लिनिक, का ही कोई डॉक्टर है, यद्यपि वह नाम मुझे नहीं बताएँगे।... मगर अब मुझे उससे करना ही क्या है, गाय-भैंस की तरह लगता है मुझको, केवल एक प्रक्रिया, एक ठंडी क्लिनिकल प्रक्रिया।... आज रात हम सफल होंगे... मैं बहुत एक्साइटेड हूँ चीफ... मैं उसे हर साल भारत लाया करूँगी।"[6] इन वाक्यों से ही मालूम होगा कि आज के नारी-पुरुष को काम विषय पर कोई संकोच नहीं है। "जब अजनबियों और मित्र-पत्नी के साथ काम प्रसंग इतना निरावृत हो गया तो दंपति के बीच इस प्रसंग में झिझक का क्या काम।"[7] पुनरावृत्ति में सैली ने अपने गुरु के साथ ऐसा व्यवहार किया है। आधुनिक युग की अतिबौद्धिकता और ज़डत्व यौन गोपन - ह्रास को बढ़ावा देती है।

विवाह रहित यौन जीवन : उषाजी की कहानियों के कुछ पात्र विवाह रहित यौन जीवन को स्वीकार करते हैं। पूर्ति की तारा प्राध्यापिका है। रू प की कमी के कारण उसकी शादी नहीं हुई। अकेलेपन से मुक्ति के लिए वह हमेशा व्यस्त रहना चाहती है। ऐसे ही एक दिन उसका मिलन नलिन से होता है। "प्रेम की पूर्ति से व्यक्ति संतुलित तथा स्वास्थ्य होता है। इसी प्रकार की स्थिति से तारा गुज़रती है।"[8] 'संबंध' में श्यामला बंधे बंधाये जीवन से मुक्ति पाने के लिए अविवाहित होकर, विवाहित सर्जन के साथ संबंध रखती है। 'प्रसंग' कहानी में डॉ. ममता जैन विदेश में राघव नामक विवाहित व्यक्ति से रागात्मक संबंध जोड़ती है।

स्त्री-पुरुष संबन्ध में आया नयापन आधुनिक युग की विशेषता है। यह पुरुषों के साथ स्त्री के समाज में अधिकार की माँग थी। स्त्री-पुरुषों के साथ का आकर्षण इस काल में दैहिक स्तर पर आरंभ हुआ। अंतर्जातीय विवाह, विवाह से पूर्व युवा -युवतियों का एक साथ रहना, धूमना, संबन्ध रखना आदि विवाह रहित यौन जीवन को प्रोत्साहित करते हैं।

निष्कर्ष स्प में कह सकते हैं कि आधुनिक स्त्री और पुरुष के परिवर्तित दृष्टिकोण उषाजी की रचनाओं में पर्याप्त अभिव्यक्ति प्राप्त की है। विदेशी एवं पाश्चात्य परिवेश पर बुने हुए पात्र होने पर भी उषाजी के पात्रों के पीछे भटकता हुआ भारतीय जन-मानस विद्यमान है। पुरानी एवं नयी पीढी की वैचारिक भिन्नता, परिवर्तित मानसिक दशा आदि उनकी कहानियों में मौजूद है। समस्या संपन्न नारियों के चित्रण में उषाजी सक्षम है। पारिवारिक एवं दाम्पत्य विघटन से ग्रसित नारियों से लेकर अंतरद्वन्द्व, घुटन, तनाव आदि से पीडित नारियों का चित्रण भी उनकी कहानियों में विद्यमान हैं।

सन्दर्भ सूची

1. उषाप्रियंवदा- मोहबंध ज़िंदगी और गुलाब के फूल, संपूर्ण कहानियाँ पृ.192
2. उषाप्रियंवदा- जाले, संपूर्ण कहानियाँ पृ.184-185
3. उषाप्रियंवदा- कँटीली छांह संपूर्ण कहानियाँ पृ.166
4. डॉ. श्रीराम.बा.महाजन - आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काममूलक संवेदना पृ.11
5. डॉ. मिथलेश रोहतगी - हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ. 157
6. उषाप्रियंवदा - पुनरावृत्ति शून्य तथा अन्य रचनाएँ पृ.18-19
7. डॉ.मिथलेश रोहतगी-हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ.157
8. मंगल कपीकेरे-साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी पृ.189

असोसियट प्रोफसर, हिंदी विभाग
पष़श्शिराजा एन एस एस कॉलेज
मट्टन्नूर, कण्णूर

कामकाजी एवं गैर-कामकाजी महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि का अध्ययन

श्वेता पुरी

सारांश : प्रस्तुत अध्ययन में कामकाजी एवं गैर-कामकाजी महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि का अध्ययन किया गया। अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग जिले के कार्यरत एवं अकार्यरत 200 महिलाओं का चयन उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि द्वारा किया गया। शोध हेतु डी.एस.सिसोदिया एवं पूजा चौधरी (2012) द्वारा निर्मित मनोवैज्ञानिक समृद्धि मापनी का प्रयोग किया गया, जिनके आयाम-संतुष्टि, दक्षता, सामाजिकता, मानसिक स्वास्थ्य तथा पारस्परिक संबंध है। प्रदत्तो के विश्लेषण हेतु 'टी' मूल्य ज्ञात किया गया। निष्कर्ष में कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि में सार्थक अंतर पाया गया, मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम संतुष्टि, सामाजिकता एवं पारस्परिक संबंध में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है, परन्तु दक्षता एवं मानसिक स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्द : मनोवैज्ञानिक समृद्धि, कार्यरत महिलाएँ, अकार्यरत महिलाएँ, सकारात्मक दृष्टिकोण

प्रस्तावना : आधुनिक युग में दिन-प्रतिदिन पारिवारिक परिवेश बदल रहा है, इस युग में महिलाओ की दशा में कई परिवर्तन आए हैं। प्राचीन समय में जहाँ महिलाएँ केवल घर का कार्य करती थीं, वहीं वर्तमान युग में महिलाएँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में कार्य कर रही हैं, इनके अलावा कई महिलायें पढ़ी-लिखी होने के बावजूद अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए घर से बाहर जाकर कार्य नहीं करती है । कामकाजी या गैर कामकाजी दोनों प्रकार की महिलाओं को अपने परिवार में सामंजस्य बना कर चलना पड़ता है। कामकाजी महिलाओं पर अपने घर एवं कार्यस्थल के कार्यो की दोहरी जिम्मेदारी होती है जिसे सही प्रकार से समझना एवं उनका निर्वाह करना होता है। इन सभी का समायोजन करते- करते कई बार महिलाओं की मानसिक स्थिति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। महिलाएँ घर तथा बाहर दोनों क्षेत्रो में आपसी समायोजन करते हुए कई बार नकारात्मक मानसिकता से ग्रसित हो जाती हैं जो कि उनमें निम्न मनोवैज्ञानिक समृद्धि के स्तर को प्रदर्शित करता है। ऐसी महिलाएँ जो कि इन सभी परिस्तिथियों के बावजूद अपने जीवन में सकारात्मक होती हैं, उनके मनोवैज्ञानिक समृद्धि का स्तर उच्च होता है।

मनोवैज्ञानिक समृद्धि किसी भी व्यक्ति की सकारात्मकता को प्रदर्शित करता है, यदि कोई व्यक्ति कहता है कि मैं अपने जीवन से खुश व संतुष्ट हूँ, तो उस व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक समृद्धि का स्तर उच्च होता है, इन व्यक्तियों में अपने जीवन में आने वाली विपरीत परिस्तिथियों को सामना करने की क्षमता अच्छी होती है क्यूंकि वे नकारात्मक परिस्तिथियों में भी किसी न किसी प्रकार की सकारात्मकता को देख लेते है एवं उसका निवारण करने में सक्षम होते है, परन्तु वे व्यक्ति जो अपने जीवन में चीजों को सकारात्मक रूप में कम तथा नकारात्मक रूप में ज्यादा देखते है एवं सोचते है वे अपने जीवन से असंतुष्ट व नाखुश होते है, इस प्रकार के व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक समृद्धि का स्तर निम्न होता है।

महिलाएँ चाहे कामकाजी हों या गैर-कामकाजी, भारतीय परम्परा के अनुसार घरेलू जीवन का उत्तरदायित्व महिलाओं को ही निभाना पड़ता है, इन उत्तरदायित्वों को निभाते हुए महिलाओं को कई तरह की मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है, जिसका प्रभाव उनकी मनोवैज्ञानिक समृद्धि पर भी पड़ता है। घर से बाहर निकलकर कार्य करने से महिलाएँ संतुष्ट एवं सकारात्मक होती हैं या केवल घर की जिम्मेदारियों का निर्वाह कर सकारात्मक एवं संतुष्ट जीवन जीती हैं, प्रस्तुत शोध में इन्ही कारणों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

चौधरी एवं अहमद (2017) ने अपने अध्ययन में गृहिणियों एवं कामकाजी महिलाओं के बीच मनोवैज्ञानिक समृद्धि के स्तर की जांच की और उन्होंने पाया कि बुजुर्ग कामकाजी महिलाओं की तुलना में बुजुर्ग गृहणियों की मनोवैज्ञानिक समृद्धि का स्तर निम्न है। जी सोनल एवं बी परमार (2014) ने कामकाजी महिलाओं तथा गैर कामकाजी महिलाओं के मानसिक स्वस्थ तथा वैवाहिक समायोजन का अध्ययन किया और पाया कि कामकाजी महिलाओं तथा गैर कामकाजी महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य तथा विवाह समायोजन के बीच सार्थक अंतर है। ब्रान्चमेल (2013) ने अपने अध्ययन में पाया कि कामकाजी महिलओं में ज्यादा घनिष्ठ तथा समायोजन वैवाहिक संतुलन और अच्छी जीवन शैली पायी जाती है जबकि गैर कामकाजी महिलओं में मनोवैज्ञानिक आक्रामकता एवं तनाव ज्यादा देखा गया है। परमार (2018) ने अपने अध्ययन में कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि का अध्ययन किया, उन्होंने पाया कि 25-40 वर्ष एवं 46-55 वर्ष कि कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि में अंतर नहीं है। अकरम (2017) ने 35 कार्यरत एवं 35 अकार्यरत महिलाओं का अध्ययन किया, उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं के आत्मसम्मान एवं मनोवैज्ञानिक समृद्धि में सार्थक अंतर पाया।

अध्ययन के उद्देश्य : कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओ की मनोवैज्ञानिक समृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना : कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं की मनोवैज्ञानिक समृद्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

न्यादर्श : प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग जिले की कार्यरत एवं अकार्यरत 200 महिलाओं का चयन उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि द्वारा किया गया है।

परिसीमा : प्रस्तुत अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग जिले में निवासरत 18-40 वर्ष की 200 कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं का अध्ययन किया गया है।

उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन हेतु डी.एस.सिसोदिया एवं पूजा चौधरी (2012) द्वारा निर्मित मनोवैज्ञानिक समृद्धि मापनी का प्रयोग किया गया, जिनके आयाम संतुष्टि, दक्षता, सामाजिकता, मानसिक स्वास्थ्य तथा पारस्परिक संबंध है।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

कार्यरत महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि का मध्यमान 192.12 तथा प्रामाणिक विचलन 18.78 पाया गया, अकार्यरत महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि का मध्यमान 185.31 तथा प्रामाणिक विचलन 18.45 पाया गया। मध्यमान की सार्थकता ज्ञात करने के लिए 'टी' मान की गणना की गई, जिसका मान 2.55 प्राप्त हुआ, जो की 0.05 सार्थक स्तर के मान 1.97 से अधिक है जो यह दर्शाता है कि कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं की मनोवैज्ञानिक समृद्धि में सार्थक अंतर पाया गया हैं अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। उपरोक्त सारणी क्र.1 से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम 1 (संतुष्टि), आयाम 3 (सामाजिकता) एवं आयाम 5 (पारस्परिक संबंध) के टी मूल्य क्रमशः 0.42, 1.63 एवं 0.66 जो की 0.05 सार्थक स्तर के मान 1.97 से कम है जो यह दर्शाता है की कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं की मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम संतुष्टि, सामाजिकता एवं पारस्परिक संबंध में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है, जबकि मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम-2 दक्षता एवं आयाम- 4 मानसिक स्वास्थ्य के टी मूल्य क्रमशः 2.67 एवं 2.66 जो कि 0.01 सार्थक स्तर के मान 2.60 से ज्यादा है जो यह दर्शाता है की कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं की मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम दक्षता, मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अंतर पाया गया।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन में कार्यरत एवं अकार्यरत महिलाओं के मनोवैज्ञानिक समृद्धि में सार्थक अंतर पाया गया है। मनोवैज्ञानिक समृद्धि के आयाम संतुष्टि, सामाजिकता एवं पारस्परिक संबंध में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है, परन्तु दक्षता एवं मानसिक में कार्यरत महिलाओं में अकार्यरत महिलओं कि अपेक्षा विचलन अधिक पाया गया है। कार्यरत एवं अकार्यरत

महिलाओं की संतुष्टि,सामाजिकता एवं पारस्परिक संबंध में अंतर नहीं पाया गया क्यूंकि दोनों के ही अपने-अपने स्तर पर संतुष्ट, सामाजिक एवं उनके अन्य के साथ संबंध अच्छे होते है।

कार्यरत महिलाएँ अपने कार्यक्षेत्र में दक्ष होती हैं, दक्षता पूर्वक कार्य करने से उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है, जो कि मनोवैज्ञानिक समृद्धि में सहायक होता है तथा इन महिलाओं को अपने कार्यस्थल तथा घर दोनों स्थानों में समायोजन बनाकर कार्य करना पड़ता है, जिससे उनमें तनाव की अधिक संभावना होती है और यह मानसिक तनाव उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, जिससे कि उन्हें अपनी दक्षता दोनों स्थानों में प्रदर्शित करनी होती है जबकि अकार्यरत महिलाओं में घर की जिम्मेदारियाँ होती हैं जिनसे उनमें कार्यरत महिलाओं कि अपेक्षा तनाव कम होता है।

शैक्षिक महत्त्व : मनोवैज्ञानिक समृद्धि किसी भी व्यक्ति में सकारात्मकता को प्रदर्शित करता है, जीवन में आने वाली कई चुनौतियों का सामना करने के लिए महिलाओं में मनोवैज्ञानिक समृद्धि का अधिक होना आवश्यक होता है, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण मनुष्य के सफल एवं स्वस्थ जीवन में सहायक होता है अतः मनोवैज्ञानिक समृद्धि हमें विपरीत परिस्तिथियों में भी इच्छा शक्ति एवं सकारात्मक दृष्टिकोण बनाये रखने में सहायता करती है।

मनोवैज्ञानिक समृद्धि में वृद्धि करने हेतु महिलाओं को सारे कार्य चाहे वह घर के काम हो या बाहर के वे अपना दृष्टिकोण सकारात्मक रख कर करें, महिलाएँ अपने घर का आधार होती हैं उनके सकारत्मक रहने से घर का वातावरण अच्छा रहता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

अग्रवाल, जे. (1996), एजुकेशन रिसर्च एंड इंट्रोडक्शन, आर्य बुक डिपो. न्यू दिल्ली।

चौधरी और अहमद (2017)., भारत के उत्तर बिहार के मिथिला क्षेत्र की गृहिणियों और कामकाजी महिलाओं के बीच मनोवैज्ञानिक कल्याण का एक अध्ययन, मानव संसाधन और औद्योगिक अनुसंधान का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 4(2), 2349-3593

पाठक, डी. (2021). कामकाजी और गैरकामकाजी महिलाओं के वैवाहिक जीवन में समायोजन एवं तनाव का तुलनात्मक अध्ययन (बांसवाडा जिले के सन्दर्भ में) चेतना इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन, ISSN-2231-3613 (प्रिंट), 2455-8729 (ऑनलाइन)

पाठक, पी.डी. (2014). शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, 136-145.

पारसनाथ, आर. (1999) ; अनुसन्धान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा-3।

मोहम्मद अकरम (2017). कामकाजी और गैर-कामकाजी महिलाओं के आत्मसम्मान एवं मनोवैज्ञानिक समृद्धि द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, 5(1), 2349-3429

परमार, आर. (2018). कामकाजी और गैर-कामकाजी महिलाओं की मनोवैज्ञानिक समृद्धि रिसर्च गुरु , 2 (12).

लोकेश, के. (1998) ; मेथेडोलाजी ऑफ एजुकेशन रिसर्च विकास पब्लिकेशन हॉउस प्रा.लि. आगरा।

लोकेश, के. (2005), शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, मेरठ, आर.लाल. बुक डिपो।

रायफ सी.डी एवं अन्य (2004). पोसिटिव हेल्थः कनेक्टिंग वेल बीइंग विथ बायोलाजी.फिलोसोफिकल ट्रांसक्शन ऑफ द रायल सोसाइटी, 1383-1394.

रायफ सी.डी .(1995). साइकोलॉजिकल वेल बीइंग इन एडल्ट लाइफ .करंट डायरेक्शन इन साइकोलॉजिकल साइंस,4(4), 99-104.

रायफम एवं सिंगर (1998). द कॉटर्स ऑफ़ प्पॉज़िटिव ह्यूमन हेल्थ. साइकोलॉजिकल इन्क्वारी, 9, 1-8.

साहिरा बानो (2019), कामकाजी और गैर-कामकाजी विवाहित महिलाओं के समायोजन से संबंधित समृद्धि के स्तर का एक तुलनात्मक अध्ययन- जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च

त्रिपाठी लालवचन (2002); मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धतियाँ, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

शोध निर्देशिकाः **डॉ सुनीता बोकड़े,**
प्राचार्या, खालसा महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग)

शोध छात्रा,
कल्याण स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय,
भिलाई सेक्टर - 7, दुर्ग, छत्तीस गढ

समकालीन कहानियों में परंपरा एवं रूढ़ियों के विरुद्ध ग्रामीण औरतों का प्रतिरोध

डॉ.जोयीस टॉम

परंपरा अतीत का वर्तमान है ।प्राचीन मातृ-सत्तात्मक समाज से स्वत्व बोध से परिचालित आधुनिक नारी तक की विकास यात्रा में स्त्री समाज ने अनेक उतार-चढ़ावों को झेला है। समाज और उसके एक अभिन्न अंग के रूप में कुटुंब, स्त्री की सामाजिक तथा बौद्धिक विकास के लिए बाधा बन गए थे। उनका जीवन सदाचार की तावीज से बांधा गया था। धीरे-धीरे सदाचार दुराचार में और प्रथाएँ कुप्रथाओं में परिणत होते चले गए। रीतियाँ रूढ़ियाँ बन गई और क्रमशः रूढ़ियाँ सच्चाई साबित हुई। घर की चार दीवारों के भीतर स्वयं छीजते हुए भी उसके आदेशों और आदर्शों का पालन करती हुई स्त्री ने अपने ही पैरों पर बेड़ियाँ बांधकर जाने-अनजाने समूचे नारी समाज को गतिरोध खड़ा कर दिया। लेकिन आधुनिकता ने इस परम्परा को तोड़ा और स्त्री को वास्तविकता का एहसास दिलाया। आत्मसम्मान और स्वावलम्बिता का महत्व दिखाया। अपने अधिकारों से अवगत कराया। आधुनिक चिंतन ने स्त्रियों को अपने हिस्से की ज़मीन और आसमान पर हक जताने की नई चेतना दिलाई। आज प्रतिरोध का मतलब स्त्री जानती है। उसे मालूम है कि परंपरा एवं कुप्रथाओं के विरुद्ध प्रतिरोध में ही उसकी भलाई है। वह प्रतिरोध ही समकालीनता है। समकालीन परिवेश में नारी परंपरा की खामियों से सचेत है और उसके विरुद्ध संघर्षरत भी । समकालीन कहानियों में कई निदर्शन हैं। इस आलेख में समकालीन कहानियों में अभिव्यक्त निम्न वर्गीय नारी जीवन पर ज़ोर दिया गया है।

राकेश वत्स की 'सावित्री' कहानी में 'सावित्री' जीवन की कठिनतम परिस्थितियों से गुज़र रही है। वह ग्रामीण है । उसकी शादी शहर के एक 'महतराने' में हुई थी। ससुराल वालों को यह खबर शादी के बाद ही लगी थी कि सावित्री की माँ डायन थी और उसे ज़िन्दा जलाया गया था। सावित्री की बेटी को ससुराल वाले 'डायन नानी का पुनर्जन्म' मानते हैं। किसी न किसी तरह उस बच्ची से बला छुटाने की खातिर उस नन्ही सी जान का पैर रौंद दिया जाता है। आखिर थकी-हारी सावित्री ससुराल छोड़ती है, अपने बचपन के किसी 'मीता' के साथ शादी करती है और ससुराल में अपने तीन सालों की मेहनत के बदले उसे तीन हज़ार रुपये नकद देने का प्रस्ताव रखती है, ताकि उसकी बेटी के पैरों का इलाज संभव हो ।ससुराल में उसका जो शोषण हुआ था, उसके खिलाफ किस अन्दाज़ में पेश आना चाहिए, सावित्री खूब जानती है।

गाँवों में कई रीति-रिवाज प्रचलित हैं। गाँव का एक अंधविश्वास के मुताबिक मात्र लड़कियों को पैदा करने वाली औरत 'कुलच्छ्नी' है । लोगों का मानना है कि अगर लड़का हुआ तो वह परंपरा को जारी रखता है और लड़की बस 'सर के उपर टंकी तलवार के समान' है। इस वजह से घर-घर में बेटियाँ केवल 'भरसन' की हकदार बनती है । भोजन में भी लड़का-लड़की का अंतर मौजूद है। शिवमूर्ति की 'भरत-नाट्यम' कहानी की 'पत्नी' की हकीकत इन हालातों से गुज़रती है। एक तरफ उसका निकम्मा 'मरदराम' जो पढ़ा-लिखा है और अपने 'आदर्शों के पुलिंदे लपेटे' बेकार घूम रहा है । उसको नौकरी कई मिली, लेकिन उसका आदर्श उसे कहीं टिकने नहीं देता। सच्चाई चाहे जो भी हो पत्नी के सामने वह निकम्मा है । दूसरी तरफ तीन-तीन लड़कियों को जने कोख की स्वामी होने के नाते घर में मिलता तिरस्कार। इन हालातों से निबटने का सरल उपाय एक बेटे को जन्म देना है। इसलिए वह पति को उकसाती रहती है। मगर मरदराम कहाँ मानता है। आखिर वह अपने जेठ को कमरे में बुला लाती है, जो 'दो-दो संड-मुसंडों वाला महराज' है। इसके बारे में अपने पति को सफाया देने में भी उसे गलती नहीं महसूस होती है - "उनकी कोई गलती नहीं है। उनका हाथ पकड़कर

मडहे से लिवा लायी थी, बेटा पाने केलिए।"[1] उस औरत को बेटियाँ वाकई बेकार ही लगती हैं - 'कोई लडका तो होना चाहिये, बेटियों से क्या होगा?"[2] इधर मौजूदा पुरुष-कामी परंपरा के सामने औरत, औरत का ही दुश्मन साबित होती है और एक पत्नी अपनी सामाजिक गठबंधन का अतिलंघन करती है। 'भरतनाट्यम' कहानी की 'पत्नी' का प्रतिरोध अपने 'मरदराम' की निष्क्रियता के विरुद्ध है लेकिन उसके जरिये कहानीकार ने पुरुषवादी सामाजिक व्यवस्था की कुरीतियों पर प्रश्न-चिह्न डाला है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'ग्रहण' कहानी में समान प्रसंग अंकित है । यहाँ समस्या 'बाँझपन' की है। कमी-कमज़ोरी चाहे पुरुष की हो या स्त्री की, बाँझपन का कलंक हमेशा स्त्री पर ही लगता है। कहानी में बिरमपाल चौधरी की बहू की कोई शारीरिक कमज़ोरी नहीं है। फिर भी बाँझपन का इल्जाम उसपर ही लगा हुआ है। अपमान का घूंट पी-पीकर आखिरकार एक दलित युवक से वह गर्भवती बनती है और बेटे को जनम देती है। बेटे के लिए मोहताज होना चाहे 'बिरमपाल चौधरी की बहू' की मजबूरी हो, कुल की लाज की चिन्ता उसे ज्यादा अपवित्र दिखती है। उसकी मजबूरी के सम्मुख जाति-परक हीनता बोध कोई मायना नहीं रखता। परंपरा की बेड़ियाँ वह स्वयं तोड़ती है।

भारत के कई गाँवों में अब भी बाल विवाह की कुप्रथा प्रचलित है। कम उम्र में बच्चों की शादी रचा देते हैं। इसकी वजह यह ठहराते हैं कि माँ-बाप 'पतोह की मूँह' देखे बिना मरना नहीं चाहते। मौत किसी भी समय आ सकती है। उसे टाला नहीं जाता। इसलिये 'पतोह के मूँह' देखने केलिए शादी को वे थोड़ा आगे खींच लाते हैं; इतना आगे कि वर-वधू को भी न मालूम हो जाये कि शादी हो रही है या कोई खेल। बाद में विवाह तोड़ना और नया रिश्ता जोड़ना भी आसान हो जाता है, जैसे माल-मवेशियों की बिक्री। लेकिन गलती का मोल बाल वर-वधुओं को ही चुकाना पड़ता है। अकसर ये शादियाँ बाद में तोड़ी जाती हैं और नये सिरे से जोड़ी जाती हैं। बचपन से बँधाए गये सपने बेकार होते हैं। लड़कों की तुलना में लड़कियों को ज्यादा कष्ट झेलना पड़ता है। बाल विवाह कराई जाने के उपरांत लड़की अपने ही घर में 'पराये की अमानत' मानी जाती है। माँ-बाप पराये जैसा व्यवहार करने लगते हैं। फिर सयानी बनने से पहले ही उसकी 'गौना' कराती है और तब से ससुराल में उसकी गुलामी का दौर शुरू होता है। दरअसल यह शादी नहीं सौदा है- मवेशियों का सौदा। संजीव की 'अंतराल' कहानी इसका दृष्टांत है। कहानी में 'माधवी'और 'मनोज के बापू' के बीच बाल-विवाह हुआ था। नियमित रूप से 'मनोज का बापू' 'माधवी' का पति है ,फर्क सिर्फ इतना है कि माधवी की 'गौना' नहीं कराई गई है और वह मायके में मर रही है । फिलहाल 'मनोज के बापू' का किसी दूसरे घर से रिश्ता जोड़ने में उसके माँ-बाप को ज्यादा फायदा सूझता है। इसलिये माधवी को 'तिरिया चरित्तर' ठहराकर 'मनोज के बापू' की शादी एक विधवा से कराई जाती है, ताकि उस औरत के भाई के साथ मनोज के बापू की विधवा मौसी की शादी हो जाए। माधवी और मनोज के बापू के सपनों पर पानी फेरा जाता है । इस पर कहानी में एक औरत यों व्यंग्य कसती है - "तुम्हारे घर तो बैल बेचे जाते हैं , मिली, जोड़ी फोड़कर भी बेच देंगे अपने लाभ के लिए, लेकिन आदमी बैल नहीं होता।"[3]आदमी और बैल के बीच फर्क करना उन गँवारों को क्या आता है, मगर 'माधवी' जानती है। सालों बाद अपने बेटे के लिए उसकी बेटी का हाथ माँगते हुए 'मनोज के बापू' को माधवी बीच में ही रोकती है-"फिर वही भूल ? अरे अगर समय पर होगी तो होगी । आदमी को गाय-बैल समझने का चलन से तो छुटकारा पाइए.....और फिर इस बात की क्या गैरेंटी है कि तुम्हारा बेटा तुम्हारे जैसा नहीं होगा? माधवी इधर परंपरा की बनी-बनाई लीक को काटती है ।

'शिवमूर्ति' की 'तिरिया चरित्तर' की 'विमली' की भी यही हालत है। उसका भी बाल-विवाह हुआ था किसी गँवार के साथ, जो अब शहर में मजदूरी कर रहा है। इसके अलावा उस आदमी का कोई अता-पता नहीं है। विमली सुना है कि उस आदमी की नौकरी चाकरी ठीक नहीं है और अपने पेट भर का ही वह कमा पाता है। इसलिए विमली के माँ-बाप वह

रिश्ता तोड़ना चाहते हैं। लेकिन हकीकत यह थी कि उसका पिता किसी की सौंपी गई दस रुपये के हुक्के तंबाकू पर फँस गया था। लेकिन वह फैसला 'विमली' नहीं मानती है- "आज सोच सकती है अगर उसमें कोई खराबी हो। कम पैसे ही कोई खराब हो जाता है । बियाह तूने लड़के से किया था कि पैसे से? मेहनत करेगा आदमी तो एक रोटी कहीं भी मिलेगी । आदमी को अपनी मेहनत पर रीझना चाहिए कि दूसरे की पैसे पर? .....दस रुपये के हुक्के तंबाकू पर तूने अपनी बिटिया को राँड समझ लिया रे? जिसकी औरत उसे पता भी नहीं और तू उसे दूसरे को सौंप देगी? गाय बकरी समझ लिया है?"[4] वह दूसरी शादी केलिए राज़ी नहीं होती है। फैसला उसकी अपनी है।

खेती का बँटवारा एक अहम मुद्दा है जिससे दूसरा कुरुक्षेत्र शुरू होता है। पहाड़ी इलाकों में ज़मीन का बँटवारा रोकने के लिए एक अनोखी प्रथा प्रचलित है, जिसके अनुसार घर में केवल बड़ा भाई ही शादी कर सकता है और उसकी बीवी सभी भाइयों के लिए बीवी बन जाती है। सभी भाइयों का उस औरत पर सामान अधिकार है। 'संजीव' की 'हिमरेखा' कहानी के 'कपिल' की आंतरिक व्यथा अपनी भाभी को इस तरह बीवी बनाने की नियती को लेकर है। वह सिर्फ सात साल का था जब भाभी उसके घर आयी थी। तब से उसका खाना, पीना, नहाना सोना सब कुछ भाभी के कहने पर था। उसके लिए भाभी 'माँ' थी और भाभी के लिए वह पुत्र समान। भाभी कपिल को रो-रोकर समझाती है-"मुझ पर दया करने की ज़रूरत नहीं। हम तो बर्फ हैं बर्फ, ठंडे ठिठुरे हुए, जमकर पत्थर बन चुके हैं। जहाँ पड़े हैं सालों-साल पड़े रहेंगे। लेकिन तुम.....पानी हो, बहता पानी। हम तुम्हारी राह नहीं रोकेंगे। महाशुदेव क्षिमा करें, मैं तुम्हें आज़ाद करती हूँ।"[5]

उस औरत का हृदय ठिठुरकर पत्थर बन चुकी है। वह औरत कोई विद्रोह नहीं खड़ा कर सकती, हालांकि समाज सुधार के लिए कहानीकार की कोशिश जारी है। 'नमिता सिंह' की 'बंतो' कहानी का प्रसंग भी समान है। 'बंतो' का जीवन ऐसा है मानो वह कोई 'भैंस-बकरी' हो। बलबीरा नामक अधेड़ उम्र की आदमी के साथ जबरन उसकी शादी कराई जाती है। उस इनसान की तो 'बंतो' की माँ के साथ भी अनैतिक संबंध है। अकाल से अपनी बेटी को बचाने केलिए माँ दिल कड़ा कर देती है और 'बंतो' अपने गले में पहनाई गई फंदे के खिंचाव के अनुकूल गाय-बछड़ा सा खींची चली जाती है । मगर उसकी शादी क्या थी -चार दिन की चंदिनी फिर अन्धेरी रात। उसका पति मर जाता है। बंतो सोचती है-"अच्छा हुआ सिर से बला छुटा मगर समस्या दूसरी करवट ले लेती है । जैसे 'बंतो' पति के घर में अब समस्या बन गयी है, सास उसका एक आसान समाधान ढूँढ निकालती है-दूसरे बेटे द्वारा, जो शादीशुदा है और संतुष्ट है, 'बंतो' को भी रखा जाना। इस इरादे से सास 'देवर जी' को 'बंतो' के कमरे में धकेल देती है। लेकिन 'बंतो' हरगिज नहीं मानती। वह देवर जी को समझाता है - "जा बीरन जा तेरी लुगाई तेरा इंतज़ार कर रही है। मूँह के ताक रिया है मेरे भैया। जा ...अपनी कुडिया में ... जा उसके पास।"[6] वह अनपढ़ भला एक और गृहस्थी को डूबने से बचाती है। वह गतिरोध खड़ा करना नहीं चाहती। जाहिर है समकालीन कहानियों में रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं के खिलाफ नारी की आवाज़ बुलंद है। जहाँ कहीं वह व्यवस्था की शिकार होती है, वह या तो प्रतिरोध जताती है या फिर अपने भीतर गलती की एहसास को कायम रखती है। दकियानूसी विचारों के खिलाफ संघर्ष करने तथा उन्हें सुधारने के लिए ये स्त्रियाँ कटिबद्ध है। पारंपरिक नारी की गलतियों पर कुठाराघात करने में ये सक्षम है चाहे वह कहानीकार की पारदर्शिता का प्रतिफलन हो। हालांकि स्त्री अब भी स्वतंत्र नहीं है। फिर भी कोशिश जारी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भरत-नाट्यम, शिवमूर्ति
2. अंतराल, संजीव
3. तिरिया चरित्तर, शिवमूर्ति
4. हिमरेखा, संजीव
5. बंतो, नमिता सिन्ह, करफ्यु तथा अन्य कहानियाँ

सहायक आचार्य
पावनात्मा कॉलेज, मुरीक्काश्शेरी
इडुक्की,केरल,पिन.685604

हिंदी भाषा : प्रकार्य के ऐतिहासिक पड़ाओं से

डॉ सुमा ऐ

भाषा एवं संस्कृति का संबंध तो अभेद्य है। भाषा का विकास तो संस्कृति का विकास ही है। इसलिए भाषा केवल व्यक्ति का ही नहीं, राष्ट्र की पहचान होती है।भाषा के माध्यम से ही हम अपने विचारों का आदान प्रदान एंव ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों का अध्ययन करते हैं। भाषा को आजकल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं संस्कृति और सत्ता का अंग भी मानते हैं। भाषा हमारे चिंतन का आधार भी है, किसी भी राज्य की जन तंत्र की सफलता उसके नागरिकों के चिंतन पर ही निर्भर करती हैं।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ 130 से अधिक भाषाएँ एवं अनगिनत बोलियाँ प्रचलित हैं वहाँ भाषा की समस्या उत्पन्न होना स्वाभाविक है। बहुभाषा -भाषी देश होने के बावजूत हिन्दी को इतना प्रचार कैसा मिला? इस प्रश्न का सरल उत्तर यही है कि भारत की राजधानी दिल्ली तथा उसके आसपास के राज्यों की भाषा हिन्दी थी। तीर्थ यात्रियों के ज़रिए और व्यापारियों के ज़रिए हिन्दी अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व ही संपूर्ण भारत में फैल चुकी थी। स्वतंत्रता संग्राम के अवसर पर भारत को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में हिन्दी का इस्तेमाल ज़ोरों पर थी। भाषा के आधार पर भारत के राज्यों का विभाजन अंग्रेज़ों का 'फूट डालो राज करो' नीति का पारिणाम ही कह सकते हैं। हिन्दी किसी पर ज़बरदस्ती लादी जाए या हिन्दी अपनाने के लिए राज्यों के ऊपर दबाव डाला जाय तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। इसलिए हिन्दी को जनता द्वारा दिल से अपनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

संविधान सभा में दिये अपने वक्तव्य में डॉ राजेन्द्र प्रसाद जी ने इसपर विचार करते हुए कहा था - " मैं हिन्दी का या किसी अन्य भाषा का विद्वान होने का दावा नहीं करता। मेरा यह दावा नहीं है कि किसी भाषा में मेरा कुछ अंशदान है किन्तु सामान्य व्यक्ति के समान मैं कह सकता हूँ कि आज यह कहना संभव नहीं है कि भविष्य में हमारी उस भाषा का क्या रूप होगा जिसे आज हमने संघ के प्रशासन की भाषा स्वीकार किया है। हिन्दी में विगत में कई-कई बार परिवर्तन हुए हैं और आज उसकी कई शैलियाँ हैं। पहले हमारा बहुत-सा साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया था। अब हिन्दी में खड़ी बोली का प्रचलन है। मेरे विचार में देश की अन्य भाषाओं के सम्पर्क से उसका और भी विकास होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हिन्दी देश की अन्य भाषाओं से अच्छी-अच्छी बातें ग्रहण करेगी तो उससे उन्नति होगी, अवनति नहीं होगी।"[1]

अंग्रेज़ों ने अपनी प्रभुता कायम रखने के लिए यहाँ अंग्रेज़ी का प्रचार - प्रसार किया। आज़ादी के बाद भी हम भारतीयों के हृदय में गुलामी की मानसिकता बसी हुई है । इसलिए आज भी प्रशासन की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी की प्रभुता कायम है। इस पर गाँधी जी ने 1947 सितंबर 21 को 'हरिजन सेवक' में लिखा था- "मेरा कहना यह है कि जिस तरह हमारी आज़ादी को छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी हमें यहाँ से निकाल देना चाहिए।"[2] गांधीजी अंग्रेजी को गुलामी का प्रतीक मानते थे। प्रेमचंद जी भी भाषा संबंधी अपना विचार यों व्यक्त किया था - "अंग्रेज़ी भाषा पराधीनता की वही बेड़ी है जिसने अपने मन और बुद्धि को ऐसा जगड़ रखा है कि उनमें इच्छा भी नहीं रही । हमारा शिक्षित समाज इस बेड़ी को गले का हार समझने पर मजबूर है।"[3]

भाषा के बारे में अपनी साम्राज्यवाद विरोधी एवं सामासिक दृष्टि का परिचय देते हुए गांधी जी ने

'हिंद स्वराज' में लिखा, "प्रत्येक पढ़े-लिखे भारतीय को अपनी भाषा का ,हिंदी को संस्कृत का ,मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और हिंदी का ज्ञान सबको होना चाहिए। सारे भारत के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होगी। उसे उर्दू या देवनागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू और मुसलमानों में सद्भाव रहे। इसलिए बहुत से भारतीयों को ये दोनों लिपियाँ जान लेनी चाहिए।"[4] गांधीजी ने हिन्दी को किसी धर्म विशेष भाषा न मानकर सभी भारतीयों की भाषा के रूप में पहचाना था । गांधीजी का उक्त कथन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उस भाषाई षड्यंत्र का जवाब भी था जिसके बलबूते उन्नीसवीं सदी में फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा हिन्दी को हिन्दुओं और उर्दू को मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रचलित करके हिन्दू - मुस्लिम अलगाववाद की नींव तैयार की गई थी।

राजनैतिक नेताओं एंव हिंदी पक्षधरों के प्रयत्नों के फलस्वरूप 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। हिन्दी के उपयोग को प्रचलित करने के उद्देश्य से साल 1953 के उपरांत हर साल 14 सितंबर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है।

भाषा के रूप में हिंदी भारत की पहचान ही नहीं बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहक, संप्रेषक भी है। हिंदी भारत देश की राजभाषा होने के साथ ही ग्यारह राज्यों और तीन संघ शासित क्षेत्रों की भी प्रमुख राजभाषा है। राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए सरकार अनेक कार्यक्रमों का आयोजन कर रही है। हिंदी के विकास के लिए राजभाषा विभाग का गठन किया गया है। केंद्र सरकार के अधीन कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए राजभाषा आयोग अनेक कार्य कर रहा है। हिंदी दिवस के अवसर पर सरकारी विभागों में हिंदी की प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जाती हैं। साथ ही हिंदी सप्ताह का आयोजन किया जाता है। हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए सरकार ने अनेक पुरस्कार योजनाएं शुरू की हैं। सरकार द्वारा हिंदी में अच्छे कार्य के लिए 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार योजना' के अंतर्गत शील्ड प्रदान की जाती है। हिंदी में लेखन के लिए राजभाषा गौरव पुरस्कार का प्रावधान है। आधुनिक ज्ञान विज्ञान में हिंदी में पुस्तक लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए भी सरकार पुरस्कार प्रदान करती है। इन प्रोत्साहन योजनाओं से हिंदी के विस्तार को बढ़ावा मिल रहा है।

हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए राजभाषा विभाग द्वारा सी डैक के सहयोग से लर्निंग इंडियन लैंग्वेज विद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के 'लीला मोबाइल ऐप' तैयार किया है। इस ऐप से देश भर में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से जन सामान्य को हिंदी सीखने में सुविधा और सरलता होगी तथा हिंदी भाषा को समझना, सीखना तथा कार्य करना संभव होगा। वैजानिक तथा नकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा मानविकी - वैज्ञानिक शब्दावली लाखों संख्या में उपलब्ध है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान , कानपुर द्वरा भारतीय भाषाओं की लिपियों तथा देवनागरी के लिए 'जिस्ट' प्रणाली विकसित की गई , जिसको पुणे स्थित सी -डैक ने मान्यता प्रदान की है। **कविता**

जन संचार माध्यमों के बढ़ते प्रयोग के ज़रिए आज हिंदी विश्व भाषा बन चुकी है। आज यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है , वैज्ञानिक भाषा के सभी गुणों से हिंदी संपन्न है । विश्व के 180 देशों में 80 करोड़ से अधिक लोग हिंदी के प्रयोक्ता है। हिंदी सुरीनाम, मौरीशस, फ़ीजी , दक्षिण अफ्रिका , केनिया आदि देशों में बोली जाती हैं । अंग्रेज़ों द्वारा इन राज्यों में लाये गये गिरमिटिया मजदूरों के ज़रिए हिंदी भाषा भी यहाँ पहुँच गई । इन मज़दूरों की आगामी पीढ़ी भारतीय भाषा एंव भारतीय संस्कृति को बचाने में विशेष रूप से प्रयत्नशील है। भारत के बाहर कई विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। अकेले अमरीका में लगभग 20 केन्द्रों में उसके अध्ययन - अध्यापन की व्यवस्था है।

वर्तमान युग में हिंदी का प्रयोग वणिज्य, व्यापार, विज्ञापन, पत्रकारिता, जैसे विभिन्न क्षेत्रों में खूब हो रहा है। आज का युग इंटरनेट का युग है। यह भी सिद्ध हुआ है कि देवनागरी लिपि इंटरनेट के लिए सबसे अधिक उपयुक्त लिपि है। हिंदी की इसी सहजता को देखते हुए कंपनियों ने हिंदी भाषा में ही ऑपरेटिंग सिस्टम बनाए। गूगल में ऐसे 'ट्रांसलिट्रेशन टूल' उपलब्ध है जिसके जरिए अंग्रेज़ी में लिखित सामग्री को हिंदी में बदल सकते हैं। हिंदी विश्व बाज़ार में प्रभावशाली भाषा बनकर आगे बढ रही हैं। कॉरपरेट संस्थाएँ मनाफ़ा कमाने के उद्देश्य से अपना विज्ञापन हिन्दी में भी तैयार करते हैं। वैश्विक बाज़ार के कारण हिन्दी में अनेक नए शब्दों की स्वीकृति हुई है। हिन्दी के विकास के लिए बहु आयामी प्रयत्नों की ज़रूरत है। प्रशासनिक, व्यापार, शिक्षा आदि क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। विदेशी रेडियो और टेलिविज़न में हिन्दी कार्यक्रमों का प्रसारण तथा हिन्दी फिल्मों को विदेशों में मिलनेवाली सफलता भी हिन्दी की लोकप्रियता का प्रमाण ही है।

हिन्दी भाषा एवं संस्कृति विश्व में एकता का निर्माण करती है। भाषा एंव संस्कृति ही हमारी राष्ट्रीय एकता एंव अखंडता का प्रतीक है। भाषा बोलनेवालों से ही उनका समाज बनता है। भाषा की रक्षा करना संस्कृति की रक्षा करना है क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। प्रेमचंद जी की राय में "भाषा वही बंधन है जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधते रहता है।"[5] हिन्दी भाषा की महत्व को दर्शाते हुए मैथिली शरण गुप्त जी ने कहा है कि ' हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली पंक्ति में सभासीन हो सकती है। ' हिन्दी में विश्व भाषा बनने की पूर्ण सामर्थ्य है और उसके पास विश्वबंधुत्व की शक्ति है इसलिए हर हिन्दी प्रेमी को चाहिए कि वह हिन्दी के साथ अपने को सम्बद्ध करें और अपने देश को ऊँचा उठायें ।

सहायक ग्रंथ :

1. शंकरदयल सिंह -हिन्दी राष्ट्रभाषा :राजभाषा : जनभाषा, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली 2004। पृ.सं - 29
2. शंकरदयल सिंह -हिन्दी राष्ट्रभाषा :राजभाषा : जनभाषा, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली 2004। पृ.सं - 66
3. प्रेमचंद - कुछ विचार , पृ.सं - 116
4. संपूर्ण गांधी वांग्मय , खंड 10 पृष्ठ 56
5. प्रेमचंद - कुछ विचार , पृ.सं - 119

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग
यूनिवेर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल

कविता

मंजिल की ओर

श्रीनिधी शिवदासन

मंजिल तक पहुँचना
मुश्किल है समझना तुम।
ज़रूरी है ये कुछ बातें
मन में हिम्मत और खुद की मेहनत,
मित्रों का साथ और सिर पर
माँ, बाप और गुरु के हाथ।
फिर क्या?

मंजिल अपने आप आयेगा तुम्हारे पास
जिस तक पहुँचने की थी तुम्हें प्यास!

बी.कॉम (फ़ैनान्स)
एस एन जी एस कॉलेज
पट्टांबी, पालक्काट - 679 306

कबीर के समाज चिंतन

शशि कुमारी

सारांशः- हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन साहित्य तथा कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल की समय सीमा संवत् 1375 से 1700 तक स्वीकार की है। इस शोध आलेख में कबीरदास के सामाजिक दृष्टिकोण या उनकी सामाजिक चेतना का वर्णन, उदाहरण सहित किया गया है जो आज के इस बौद्धिकतावादी समाज एवं हिंसा के पथ पर चलने वाले भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा।

बीज शब्दः मध्यकाल, समाज, अन्धविश्वास, जाति-पाति, हिंसा,

कबीर के समाज दर्शन : संत कबीर का आगमन एक ऐसे समय में हुआ जब भारत मुसलमानों के आक्रमणों, सामाजिक आडम्बरों व कुरीतियों से घिरा हुआ था। साम्प्रदायिक हिंसा ज़ोरों पर थी। मध्यकाल की सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैंः- "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वह कुछ भी नहीं कर सकते थे।"[1]

अच्छे समाज का निर्माण वहाँ के स्वतंत्र विचारों वाले व्यक्तियों से ही सम्भव हो सकता है। मध्यकालीन समाज, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से खण्ड-खण्ड हो चुका था। यह युग ऐसे शासकों का युग था जो विधर्मी थे। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति को अपने अनुसार परिवर्तित करना था। साधारण हिन्दू जनता के पास जब कोई भी रास्ता शेष नहीं रहा तो उसने अध्यात्म एवं धर्म की शरण ली परन्तु धर्म के ठेकेदारों ने जनता के भीतर साम्प्रदायिक द्वेष की आग को सुलगाने का काम किया। मध्यकाल की इस स्थिति पर डॉ. पुष्पपाल सिंह लिखते हैंः- "उस समय हिन्दू-मुसलमानों में संघर्ष चलता ही रहता था, चाहे आक्रमणों के पीछे कितना ही छोटा कारण क्यों न हो।"[2]

कबीर के समय में धर्म के क्षेत्र में एक ओर जहाँ शंकराचार्य का अद्वैतवाद था वहीं दूसरी ओर रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद तथा सूफियों की प्रेमधारा भी थी। जनता धर्म के इन तीनों रूपों से असंतुष्ट थी। महमूद गजनवी के लगातार आक्रमणों ने धर्म को ओर भी कमज़ोर कर दिया। मंदिरों की तोड़ फोड़ के परिणामस्वरूप सगुणोपासना की जडें तक हिल गई। ऐसे समय में कबीर के पास न तो कोई अस्त्र था न शस्त्र जिससे वह विकृत समाज को एक व्यवस्थित ढंग से पुनः स्थापित कर सकें। अतः उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों को समाप्त करने के प्रयास से एकता के भाव को स्थापित करने का प्रयास किया। कबीर अन्य वस्तुओं की अपेक्षा मनुष्य कल्याण पर विशेष महत्व देते हैं। वह अपने लिए नहीं सम्पूर्ण मानवता के लिए रोते हुए प्रतीत होते हैं।

"सुखिया सब संसार है, खावै अरू सोवै।/
दुखिया दास कबीर, जागे अरू रोवै।"[3]

अनेक आलोचकों ने कबीर को कवि बाद में तथा समाज सुधारक पहले माना है। अपनी साखियों के द्वारा जनता को सही उपदेश देना उनका मुख्य उद्देश्य था। बिना किसी भय के सब प्रकार के आडम्बरों का विरोध खुलकर करने वाले कबीरदास अनुभूति को अधिक महत्व देते हैं। समाज में व्याप्त जात-पात,

छुआ-छूत की अवहेलना करते हुए कबीर कर्म को अधिक महत्व देते हैं न कि कुल को। कबीर के अनुसारः- "मनुष्य ऊँचे कर्मो से ऊँचा बनता है न कि ऊँचे कुल में जन्म लेने से-"

कबीर का मानना है कि यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर से उपजा है और एक दिन उसी में लीन हो जाएगा। जाति-पाति के आधार पर लड़ाई-झगड़ा करना व्यर्थ बात है।

कबीर हिन्दुओं और मुस्लमानों द्वारा फैलाए गए तथा धर्म के आधार पर बनाए गए पाखण्डों का भी विरोध करते हैं। कबीर के अनुसार ईश्वर एक है। धर्म के आधार पर उस परमसत्ता परमात्मा को बाँटा नही जा सकता है। दिखावे की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैंः- "छापा तिलक बनाई करि, दग्ध्या लोक अनेक।/ तन कौं जोगी सब करै, मन कौं बिरला कोई।"[4]

कबीर बाहरी आडम्बर की अपेक्षा व्यक्तिगात आचरण और साधना पर विशेष बल देते हैं।

"न जाने तेरा साहिब कैसा है।/मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहिब तेरा बहिश है।"[5]

कबीर मूर्तिपूजा का भी विरोध करते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर की प्राप्ति किसी विशेष स्थान पर जाकर नहीं होती। सर्वव्यापी ब्रह्म प्रत्येक मनुष्य के हृदय में विद्यमान है। उसे घट-घट जाकर ढूँढना व्यर्थ है। ईश्वर तो सदैव मनुष्य के हृदय में विराजमान रहता है केवल आवश्यकता है तो बौद्धिक संसार को भूलकर अपने भीतर झाँकने की।

"काया कासी खोजै बास।/तहाँ जोति सरूप भयौ परकास।"[6]

कहने का अभिप्राय यह है कि काया का अथवा शरीर का कोई भी महत्व नहीं है। काया के भीतर रहने वाली आत्मा का महत्व है जो अविनासी है। एक अन्य स्थान पर मूर्ति पूजा के विषय में वह कहते हैं- "पाहन पूजै हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।/घर की चाकी कोई न पूजै पीस खाय संसार।"[7]

कबीर ने अपनी वाणियों में जो समाज सुधार अथवा सामाजिक चेतना का जो व्यवहार ग्रहण किया है उसमें भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल विद्यमान है। उन्होंने मनुष्य की मनुष्यों के प्रति होने वाली अहिंसा को ही नहीं उद्घाटित किया अपितु पशुओं के प्रति होने वाली हिंसा का चित्रण करके सम्पूर्ण मानवता पर करारी चोट की है।

"दिन भर रोजा रखत हैं राति हनत हैं गाय/ यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय/बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल।/जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल।।"[8]

कुछ लोगों की यह मान्यता है कि कबीर वेदों एवं पुराणों को पढ़ने के पक्षपाती नहीं थे। उनकी यह धारणा गलत कही जा सकती है। कबीर ने ग्रन्थों को अनुभव की देन माना है परन्तु जो ग्रन्थ समाज में अन्धविश्वास को बढ़ावा देते हैं उनका वह विरोध करते हैं। उन ग्रन्थों को पढ़कर जो समाज में अन्ध विश्वास का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं उनकी निंदा कबीरदास करते हैं। कबीर के अनुसारः- "वेद कतैब कहौ क्यू झूठा/झूठा जो न बिचारै।/सब घटि एक एक करि जानै,/भी दूजा करि मानै।"[9]

कबीर प्रगतिशील सामाजिक चेतना के कवि कहे जा सकते हैं। समाज में व्याप्त विभिन्न पाखण्डों, कुरीतियों, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों की उन्होंने आलोचना की जो समाज को प्रकाश की अपेक्षा अंधेरे में धकेलने का काम करती हैं। 'हरि ही सत्य है' यही कबीर का उपदेश है। ईश्वर को इस सांसारिक मोह माया को त्यागते हुए ईश्वर की शरण ले लेनी चाहिए- "हरि मै तन है, तन में हरि है/ है पुनि नाँदी साई।"[10]

उपसंहार : उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर का सामाजिक चिंतन उन्हें एक युग पुरुष के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। भले ही कबीर ने मध्यकाल में सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर अपने उपदेश दिए

परन्तु उनके उपदेशों की प्रासांगिकता निरन्तर बनी हुई है। वर्तमान समय में जब समाज हिंसा और बौद्धिकता के रास्ते पर चल रहा है ऐसे में कबीर की वाणियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्लीः कान्ती पब्लिकेशन्स, 2007) पृ.72
2. सिंह पुष्पपाल, कबीर ग्रन्थावली (दिल्लीः नमन प्रकाशन, 2010) पृ.56
3. सिंह पुष्पपाल, कबीर ग्रन्थावली (दिल्लीः नमन प्रकाशन, 2010) पृ.57
4. शर्मा वेदव्रत, कबीर-वाणी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (दिल्लीः कल्पना प्रकाशन, 2012) पृ.6
5. सिंह पुष्पपाल, कबीर ग्रन्थावली (दिल्लीः नमन प्रकाशन, 2010) पृ.66
6. गुप्त हरिहर प्रसाद, कबीर-काव्यः प्रतिभा और संरचना (इलाहाबादः भाषा-साहित्य-संस्थान, 1983) पृ.94
7. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्लीः कान्ती पब्लिकेशन्स, 2007) पृ.73
8. वही, पृ. 73
9. शर्मा वेदव्रत, कबीर-वाणी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (दिल्लीः कल्पना प्रकाशन, 2012) पृ.9
10. शर्मा वेदव्रत, कबीर-वाणी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (दिल्लीः कल्पना प्रकाशन, 2012) पृ.34

शोधार्थी

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,

अमृतसर

कविता

हिंदी गीत

डॉ जे रामचंद्रन नायर

पर्वों में हिन्दी दिवस महान, राजभाषा -राष्ट्र भाषा संगम,
परवरिश करेंगे भारतवासी, राजभाषा हरदम।
अनेक भाषाओं की संगम भूमि
यह देव-विशेष भूमि,
अपूर्व वाणी का चयन राजभाषा की पुण्य रंगभूमि।।
देवगिरी से जाती सरल सुरीली भाषा है हिन्दी,
देशी इतिहास में हिंदी प्रेमियों की कुर्बानी की कहानी।
भारत देश है हमारी एकता की कड़ी है प्यारी न्यारी हिंदी,
भावना के पंखों पर उड़ता मन गहन गगन में हिंदी।।
जन गण मन से गुनगुनाती मनोहारी बोली,
जनता के दिल की धड़कन हर पल रटती हिंदी।
महिमा हिंदी दिवस की भूलेंगे नहीं अवर्णनीय आकर्षक,
मनाएंगे दिल से हिंदी दिवस सारे भारतवासी शुभ चिंतक।।

'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में स्त्री का संघर्षमय जीवन

ब्रीस के रुद्धन

प्रभाखेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में एक विवाहित डॉक्टर के साथ अपने संबंध का जिक्र किया है। प्रभा खेतान उस व्यक्ति के प्रेम में डूबी रहीं। पूरी उम्र उसके परिवार के पालन-पोषण में मदद करने के बाद भी भयानक सामाजिक उपेक्षा की शिकार बनी रहीं। गौर करने की बात यह है कि वे एक बड़ा बिज़नेस भी चलाती थीं। वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थी।

सामाजिक उपेक्षा सहकर भी वे एक ऐसे संबंध को जीती रहीं, जिसमें प्रेम तत्व धीरे-धीरे विलुप्त होता रहा। उनका संबंध प्रेम पर नहीं, बल्कि असुरक्षा पर टिका था। गोरी न होने के कारण उन्हें बचपन से अपने परिवार में उपेक्षा मिली। माँ-बाप एवं भाई-बहनों ने कभी भी उनकी परवाह नहीं की थी। जब वे विदेश गई थीं तो उनसे कहा कि "लौटकर मत आना। वहाँ कहीं सैटल हो जाना।" [1]

साठवीं दशक का बंगाल भी भयानक अस्थिर वातावरण का सामना कर रहा था। ऐसे में एक स्त्री को जहाँ प्यार के दो शब्द पहली बार सुनने को मिले, उन्होंने उसे सब कुछ समर्पित कर दिया। उसके बाद उन्होंने कई बार सोचा भी कि इस संबंध से बाहर निकलूँ। पर किसी भी पारिवारिक या मित्रों के एक भावनात्मक लगाव के अभाव की वजह से उन्हें पुनः उसी संबंध में लौटना पड़ा। किसी भी व्यक्ति के लिए एक भावनात्मक सहारे की सख्त ज़रूरत होती है। इसीलिए भले ही परिवार का प्रचलित संयुक्त या एकल रूप बदल रहा हो पर नए रूप में परिवार पुनः बन भी रहा है। चाहे वह लेस्बियन्स, गे संबंधों के आधार पर बने हों या आपसी समझ के आधार पर 'लिव इन' संबंधों के आधार पर बने संबंध हों। परिवार व्यवस्था समाप्त नहीं हुई है, लेकिन उसका स्वरूप बदल गया है। इस आत्मकथा में दर्शाए गए संबंधों के माध्यम से हम मानवीय संबंधों की जटिलताओं को बेहतर समझ सकते हैं। ये संबंध सिर्फ़ शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति नहीं है, बल्कि यह स्त्रियों के जीवन में जीवन के सम्मानजनित विकल्प का अभाव है।

इसे लिखने में स्त्रियों के भीतर कोई महान स्थान पाने की इच्छा नहीं थी, बल्कि ये उनके भीतर की बेचैनी थी, जो चेतना संपन्न होने के कारण समाज में बदलाव की उम्मीद कर रही थी। आत्मकथा सिर्फ़ लेखिका की अपनी कहानी भर नहीं रह जाती, बल्कि एक स्त्री के नज़रिये से उसके समकालीन समय, समाज, धर्म, राजनीति आदि को समझने का माध्यम बन जाती है। ज़िंदगी के गहरे अनुभवों से रची गई यह आत्मकथा स्त्री जीवन के हाशिएकरण से उद्वेलित दिखती है और अपने निज को सार्वजनिक करके एक प्रतिरोधी स्वर अपनाते हैं। अधिकांश स्त्री लेखिकाएँ आज स्वयं को स्त्रीवादी कहने को तैयार नहीं हैं। वे स्त्री होने के नाते संघर्षों से जूझते हुए कई बार परंपराओं का अतिक्रमण भी करती है। फिर भी स्त्रियों ने निजी दुनिया और सार्वजनिक दुनिया के बीच पड़े पर्दों को उठाया जो महत्वपूर्ण है। यहाँ से स्त्रियों का प्रतिरोध आरंभ होता है।

भारत में स्त्री-शोषण का इतिहास बहुत पुराना है। इस शोषण का ज़िम्मेदार पुरुषवादी व्यवस्था है। स्त्री-शोषण की इस प्रक्रिया को स्थाई और सर्वस्वीकृत बनाने में धर्म-ग्रंथों, संहिताओं और स्त्री-विरोधी अमानवीय सामाजिक रूढ़ियों की अग्रिम एवं निर्णायक भूमिका रही है। शोषण और गुलामी की इस लंबी प्रक्रिया के बीच स्त्री स्वाधीनता के स्वर साहित्य और जीवन में उभरते रहे हैं। लेकिन इन स्वरों को पितृसत्ता द्वारा निर्णायक परिणति तक कभी नहीं पहुँचने दिया।

डॉ संतोषकुमार बछेल के अनुसार, "जब से मानव समाज की उत्पत्ति हुई तभी से महिलाओं के प्रति जो सोच बनी वह अधिकांशतः भोग-विलास संतानोत्पत्ति का साधन मात्र ही रही।"[2] भारतीय समाज पुरुष प्रधान होने के कारण हमेशा से स्त्री को दोयम दर्जा देता रहा है। इस तरह कहा जा सकता है कि हर एक वर्ग की स्त्रियों को शोषण और अपमान से रूबरू होना पड़ता है। वह अस्पृश्यता का शिकार है, निर्धनता की पीड़ा से ग्रसित भी है साथ ही बेकारी के कारण घर से बाहर जाने पर विवश भी है। यह स्पष्ट है कि

स्त्री जीवन सहज नहीं है, बल्कि वह परिवार, समाज, कार्यक्षेत्र आदि विभिन्न स्थानों पर लिंग-भेद, जाति-भेद, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास एवं अनेक सामाजिक कुरीतियों के बहाने प्रताड़ित भी है।

कई सवाल उनसे हैं जिनके हाथों में समाज की व्यवस्था का दारोमदार है। कब तक स्त्रियों को गिद्ध की तरह झपटते रहेंगे। सवाल उन माँ-बाप से भी है जो स्त्री को बचपन से ही दोयम दर्जे का समझकर भेदभाव करते हैं। उन स्त्रियों से भी सवाल है जो शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी हमेशा चुपचाप यह अत्याचार को सहती हैं।

वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश में कंटकों से भरे रास्तों से गुज़रते चली जाती है। समाज की यातनाएँ झेलती हैं, वह अपने पैर इस धरती पर जमाने के लिए संघर्ष करती है, लेकिन यह समाज उसे सदा अपने पैरों तले कुचलने के लिए आमादा रहता है।

'अन्या से अनन्या' की प्रभा खेतान एक पाँच बच्चोंवाले पुरुष डॉ सर्राफ से प्रेम करके आजीवन अविवाहित रहकर डॉ सर्राफ और उसके परिवार के लिए समर्पित हो जाती है। समाज से सिर्फ़ आरोप, उपेक्षाएँ एवं अपमान ही उसे प्राप्त होते है। फिर भी आजीवन डॉ सर्राफ की गृहस्थी की मदद करने में कभी कोई कमी नहीं करती। परंतु डॉक्टर के निधन पर शोकसभा में अनेक वक्ता मृतक के गुणों का बयान करते हैं, लेकिन प्रभा खेतान का कोई उल्लेख तक नहीं करता। जिस परिवार को लेखिका ने संभाला उस परिवार के सदस्य भी चुपी बरतते हैं तो प्रभाखेतान हीनता से छटपटा उठती है। उसे उसका पूरा संघर्षमयी जीवन, समर्पण, त्याग व्यर्थ लगने लगता है। अपने अस्तित्व की खोज करती एक स्त्री के निरंतर संघर्ष करने, आत्मनिर्भर बनने, स्वावलंबी बनने से लेकर व्यापार की दुनिया में अपनी स्वतंत्र पहचान होने के साथ-साथ समाज के समक्ष एक मिसाल कायम की है।

पितृसत्तात्मक और लिंग-भेद पर आधारित मूल्यों और मान्यताओं के प्रति स्त्री का प्रतिरोध नारीवाद या नारी विमर्श कहलाता है। कानून और धर्मशास्त्र दोनों ने स्त्री को पराधीन बना दिया था। स्त्री को पुरुषों की तुलना में शारीरिक और बौद्धिक रस से हीन माना जाता रहा। स्त्री इस हीनता से मुक्ति की तलाश में आंदोलन द्वारा समाज और पुरुष की महत्व के विरोध में प्रतिरोध करने लगी और उस आंदोलन को विश्वरूप धारण करने में देर न लगी। प्रारंभ में स्त्रियाँ कानूनी सुधारों के लिए लड़ रही थीं। आज वह घर के भीतर, स्त्री पर पुरुष के दबाव और अधिकार के विरुद्ध संघर्ष करती है। परिवार में उनपर होनेवाले शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध करती है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि प्रभाखेतान गिरी हुई सामाजिक स्थिति का विरोध करती है। यह संघर्ष में परिवर्तित हो गई है। लेकिन स्त्री विद्रोह एक दिन की सृष्टि नहीं है, कई वर्षों से शोषित स्त्री मानसिकता की कालानुसृत परिणति है।

जौन स्टुअर्ट मिल ने स्त्री आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि का अवलोकन इस प्रकार किया है - "विशेष तौर पर सामाजिक संरचना और स्त्री की स्थिति के बीच के रिश्तों को लेकर तथा वर्ग और पुरुष सत्ता के बीच के रिश्तों को लेकर नारीवाद की विविध रैडिकल बुर्जुआ धाराओं और मार्क्सवाद की विविध धाराओं के बीच तनाव और टकराव लगाता मौजूद रहे हैं। विश्व युद्धोत्तर काल में नारीवाद की विविध सरणियों और मार्क्सवाद की विविध सरणियों के बीच लंबी बहसें चलती रही हैं जो आज भी ज़ारी है। हमारे सामने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक समाजवादी प्रयोगों के दौरान स्त्रियों की जीवन स्थितियों में आए परिवर्तनों के अनुपेक्षणीय तथ्य भी है कुछ अनसुलझे प्रश्न भी हैं। कुछ प्रयोग भी हैं और कुछ फुटती दिशाएँ भी हैं।"[3]

जहाँ कहीं भी हमारे समाज में किसी भी वर्ग के ऊपर दबाव बनेगा वहाँ उसके खिलाफ प्रतिरोध का वर्ग ज़रूर तैयार होगा भले ही देर से हो, लेकिन होगा ज़रूर। लाख प्रतिरोधों के बावजूद भी स्त्री की दशा में अभी तक ज़्यादा फर्क नहीं पड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल पेपर बैकस, 2010, पृ.106

2 कर्मानंद आर्या (सं) अस्मितामूलक साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, द मार्जिनलाइज़्ड पब्लिकेशन, इग्नू रोड, दिल्ली, सं.2018, पृ.98

3 जौन स्टुअर्ट मिल, (अनु. प्रगति सक्सेना), 'स्त्री पराधीनता' पृ.6

शोधार्थी, हिंदी विभाग, सरकारी आट्र्स व साइन्स कॉलेज, कालिकट, कालिकट विश्वविद्यालय से संबद्ध

थर्ड जेंडर संघर्ष की दस्तावेज : 'किन्नर कथा' उपन्यास के संदर्भ में

अभिरामी सी जे

विश्व में सामाजिक स्तर पर स्त्री और पुरूष दो लिंगों को ही मान्यता दी गई है। इन्हीं दो विपरीत लिंगों को सृष्टि का आधार माना जाता है, लेकिन इन दो मान्यता प्राप्त लिंगों के अतिरिक्त एक लिंग ऐसा भी है, जो न तो गर्भ धारण कर सकता है और न ही उसे हमारा समाज 'स्त्री' या 'पुरूष' की श्रेणी में रखा है। इस वर्ग को समाज में, थर्ड जेंडर, नपुंसक, हिजड़ा, किन्नर, छक्का, मौगा, अरावली, खोजा आदि कई नामों से पुकारा जाता है। थर्ड जेंडर जैविक रूप से समाज का हिस्सा होते हुए भी इनकी यौनिक अस्पष्टता के कारण समाज इन्हें अलगाव में रखते है।

बीज शब्द : थर्ड जेंडर, उपन्यास, किन्नर कथा, हिजडा,सामाजिक समस्या।

आज हिन्दी साहित्य के माध्यम से साहित्यकारों ने दलित, स्त्री, आदिवासी जैसे समाज के उपेक्षित वर्ग के साथ-साथ हिजडा के संघर्ष ग्रस्त जीवन का भी परत-दर-परत उजागर किया है। सन् 2011 में प्रकाशित महेन्द्र भीष्म जी के अपन्यास 'किन्नर कथा' हिजडा जीवन की त्रासदी, अकेलापन, परिवार से विस्थापन, अस्तित्व की समस्या, समाज से तिरस्कार को सहते किन्नरों के जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। उपन्यास का कथ्य इस प्रकार है- जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के बाद भी जमींदारी प्रथा के अवशेष जगतराज सिंह बुंदेला के घर जन्मी जुड़वी सन्तानों सोना और रूपा में से सोना के 'चन्दा'(हिजडा) बनने की कहानी है। रूपा के साथ ही महल में जन्मी सोना, रूप-रंग में समान होने के बावजूद अपूर्ण स्त्री होने के कारण न केवल अपने पिता ठाकुर जगतराज सिंह द्वारा अस्वीकार कर दी जाती है, बल्कि दीवान पंचम सिंह द्वारा उसे मार डालने का आदेश भी दिया जाता है। सोना की मासूमियत और भोलेपन से प्रभावित होकर दीवान पंचम सिंह उसे किन्नर गुरु तारा को सौंप देता है, जहाँ उसका पालन-पोषण चंदा के रूप में होता है। बाद में जब चंदा बड़ी होती है, तो उसका मनीष से प्रेम संबंध होता है और अंत में विदेश में ऑपरेशन कराकर चंदा के पूर्ण स्त्री बनने की तैयारी और आश्वासन के साथ उपन्यास का सुखद अंत होता है।

इस उपन्यास समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के साथ-साथ थर्ड जेंडर जीवन के अनेक संघर्षो को निरूपित करता है। जैसे :

पारिवारिक तिरस्कार : हिजडा को जीवन के प्रारंभ से लेकर अंत तक अनेक चुनौतियों का सामने करना पड़ता है। जिसमें अपने ही घर परिवार से बहिष्कृत होना ही उनके लिए बडा संघर्ष है। आमतौर पर जहाँ परिवार वाले अपनी हिजडा संतान को समाज के डर से तुरंत त्याग देने का प्रयत्न करते हैं। 'किन्नर कथा' में भी यही अवस्था पायी जाती है। समाज से आने वाली बुरी नज़र, कठोर सवालों से बचने और समाज में अपनी मर्यादा कायम रखने के लिए सोना के पिता अपनी बेटी की सच जानने के बाद तुरंत ही परिवार से अलग करता है। दीवान पंचम सिंह की मदद से सोना को जान से मार डालने की आदेश देते हैं। माँ की गोद से छीनने और पंचम सिंह के हवाले करने के बीच एक पिता के मन में जो अंतर्द्वद्व चलता है यह पंचम सिंह के शब्दों में- "अरे! यह क्या करने जा रहा है? जिस बेटी को प्राणों से बढ़ कर चाहा, जिसकी एक छींक में या जिस्म पर लगी एक खरोंच से वह सारी गढ़ी को सर पर उठा लेता था आज उसी बेटी की यह कैसी विदाई करने जा रहा है ? धरती फट जाय और वह उसमें समा जाय । अर्धमूर्छित-सी विक्षिप्त सी हो रही माँ की गोद से छीन कर अपनी बेटी को ले आया था वह। कैसे? कैसे दे वह पंचम सिंह के हाथों में अपनी पुत्री को काल के गाल में समा जाने के लिए"[1]' फिर भी जगतराज के लिए उसकी मर्दानगी को एक हिजडा संतान

के जन्म से ठेस लगती है। जगतराज सिंह के सामने हिजडा केवल हिजडा ही है, कोई सामाजिक रिश्ता नहीं है उसका। यह बात आज के थर्ड जेंडर के प्रति होने वाले परिवार की मनोदशा को चित्रित करता है।

पारिवारिक विस्थापन हिजडा समुदाय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण त्रासदी है। इस उपन्यास में एक और हिजडा कथापात्र है तारा, धनी परिवार में पली बडी तारा हिजड़ा होने के कारण घर से बेदकल हो गया। लेकिन तारा परिवार के साथ अपने संबंध बनाए रखने के लिए कई प्रयास करती है, लेकिन सारे प्रयास विफल रहे जैसे अपनी माँ और पिता की मृत्यु की खबर समय पर न मिलना, और यहां तक कि श्मशान घाट पर अपनी माँ को अंतिम बार देखने से भी रोकते है। वहाँ पर तारा के भतीजे ने धमकाते हुए कहा था ' तू हिजड़ा है, हिजड़ा, हमारा तेरे दर से कोई नाता नहीं, तू हमारा कुछ नहीं लगता, भाग जा यहाँ से, क्यों हमारी नाक कटाने में तुला है, हिजड़ा कहीं का"[2] माँ की खोक से जन्म होते हुए भी उन्हें अपने परिवार में स्वीकृति माँगना कितना दर्दनाक है। कथाकार ने हिजडा के जीवन की दयनीय अवस्था बड़ी ही बारीकी से दर्शायी है । विडम्बना तो यह है कि इनके अपने घर-परिवार के लोग ही इन्हें पसंद नहीं करते। उपन्यास में तारा, चंदा, सोनिया जैसे बहुत से किन्नर अपनी समस्याओं के जाल में जकड़े हुए हैं। इन घटनाओं से यह साफ पता चलता है कि परिवार के लिए खानदान का स्वाभिमान और परिवार की इज्जत ही महत्व है। इस प्रकार किन्नर कथा उपन्यास में पारिवारिक जीवन की समस्याओं का चित्रण मिलता है।

अकेलापन और आत्म संघर्ष की समस्या : साधारण नवजात शिशु की ज़िंदगी और एक ट्रांसजेंडर बच्चे की परिस्थितियाँ काफी अलग हैं। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए, ट्रांसजेंडर बच्चे को माता-पिता अपने घर के चार दिवारों के अंदर ही रखते हैं। कुछ लोग समाज के डर से बच्चे को बाहर फेंक दिया जाता है, और कभी-कभी उसे हिजड़ों के गिरोह को दे दिया जाता है। इस कहानी का केंद्रीय पात्र तारा को भी ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ता है। एक पिता अपने बच्चे के लिए सब कुछ त्यागने को तैयार रहता है लेकिन जब उसे पता चलता है कि उसका बच्चा थर्ड जेंडर है तो अपने सम्मान और परिवार की गरिमा के खातिर वह उसे मरवाने में भी संकोच नहीं करता है। पिता जगतराज सिंह ने पंचम सिंह से सोना को 'इन्दौरा की डांग' पर ले जाकर मारने का आदेश देते है लेकिन पंचम सिंह सोना की मासूमियत के आगे हार जाते हैं और उसे ना मारने का निश्चय कर स्वामीजी के आश्रम ले जाते हैं। वहाँ सोना की मुलाकात तारा से होती है। चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में तारा को पारिवारिक विस्थापन सहना पड़ा। हिजड़ा होने की सज़ा भुगत रही तारा अपने दुःख को दोस्त मातिन से इस प्रकार व्यक्त करती है- "मातिन ! भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है ? घर-बार, माँ-बाप, भाई-बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूँ, सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आप में दर्द पीते रहते हैं । दूसरों को हँसाते आये हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आये हैं, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यों उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दण्ड दिया? काश ! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरुष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं, कोई नहीं, कभी नहीं"[3] सत्य यह है कि समाज में हिजडा होकर पैदा होने से बचपन से ही प्रेम और सहानुभूति के बदले उपेक्षा, तिरस्कार और घृणा ही मिलती है।

परिवार की यह उपेक्षा तारा के मन में अनेक प्रश्न खड़ा कर देता है। वह सोचती है उसके हिजड़ा जन्म लेने से उसके माता पिता की क्या गलती थी? हिजड़ा रूप या उसकी क्या गलती है? फिर ईश्वर का तमाचा उसपर

ही क्यों पड़ा? ईश्वर ने उसके साथ क्यों ऐसा किया? क्यों किया उसने और उस जैसे अन्य हिजड़ों के साथ? क्यों बनाया उन्हें ईश्वर ने अधूरा और अपमानित रहने के लिए अभिशप्त कर दिया? क्या हम ईश्वरीय पाप की परिणति है ? प्रकृति का क्रूर मजाक है हम सब क्या नन्ही सोना जैसी बच्ची के शेष जीवन के लिए प्रकृति का अभिशाप नहीं है', जिस निर्दोष का जीवन अब उसी की तरह बीतनेवाला है । घर परिवार समाज से बहिष्कृत तिरस्कृत और त्रासदी लिए हुए। जब तक कि जीवन है, त्रासदियाँ उनके साथ हैं, वह जो न नर है, न नारी है, है तो सिर्फ और सिर्फ एक 'हिजड़ा' यही उसकी पहचान है, यही कटु सत्य है।"[4]

उपन्यास हिजडा जीवन की विभिन्न आत्म संघर्षो का चित्रण करके उनके प्रति सहानुभूती प्रस्तुत करता है।

समाज में हिजडा जीवन का चित्रण : समाज में हिजडा द्वारा भुगती समस्याओं एवं सामाजिक तिरस्कृति के कई अच्छा उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में है। उपन्यासकार ने सामाजिक रूप से हिजड़ों के बहिष्कार और एक विशेष अवसर पर उनकी उपस्थिति की चर्चा करता है। इसमें तारा, किन्नरों के प्रति मुख्यधारा समाज के मनोभावों को स्पष्ट करते हुए मातिन से कहती है - "नहीं चलो मातिन! इन लोगों से ज़्यादा बातचीत ठीक नहीं, इनसे हमारे संबंध केवल खुशी के है, नाच गाकर बख्शीश न्यौछावन लेने के बरस, इससे ज़्यादा नहीं। कोई भी हमारा साथ नहीं चाहता, हँसी - टिठोली के अलावा आज तक किसी ने अपने घर में हम हिजडों को दाखिल किया है? अपने बैठक में बिठाकर चाय-पानी को पूछा है? बाज़ार - हाट में साथ-साथ चला है? नहीं न।"[5] यहाँ समाज की संकुचित दृष्टि को चित्रित किया है। समाज नाच-गाने और मनोरंजन के लिए उनके साथ संबंध रखता है। इसके बाद उनको त्याग देते हैं। शादी-विवाह, बच्चे के जन्म और अन्य अवसरों पर उनकी उपस्थिति को अच्छा माना जाता है और इन्हीं चीज़ों से उन्हें वंचित रखा गया है- "मेल-जोल केवल वहीं तक इनकी खुशी, शादी, ब्याह, बच्चों का जन्म या मुण्डन, हमीं बिन बुलाए बेशर्मी से तालियाँ पीटते पहुँच जाते हैं, बिन बुलाए मेहमान की तरह हमें हिकारत की दृष्टि से देखते हैं, कोई नहीं चाहता हमारा साथ दूर भागते हैं हमारी छाया से जैसे हम इंसान न हों, कोई अजूबा हों, अछूत की तरह व्यवहार किया जाता है, हम हिजड़ों से उठो, मातिन हम हिजड़ों के नसीब में जो लिखा है, वे हमें भोगना है, शापित जिंदगी जी रहे हैं हम लोग।"[6] उपन्यास के तहत समाज द्वार पीडित थर्ड जेंडर के जटिल समस्या जैसे अपमान, घृणा, व्यंग्य, उपेक्षा और तिरस्कार को चित्रित किया गया है।

निष्कर्षतः से यह कहा जा सकता है कि उपन्यासकार महेन्द्र भीष्म ने किन्नर कथा उपन्यास के माध्यम से हिजडाओं को उपहास का पात्र नहीं बनने दिया । उपन्यास पढकर स्वयं उनके प्रति सहानुभूति नज़रिया में उन्हें समझाने को पाठक को विवश करता है। थर्ड जेंडर के संघर्ष एवं समस्याओं को पाठकों के सामने लाकर समाज में हाशिये रहे इन समुदाय को मुख्यधारा में उभारने का प्रयास किया है। थर्ड जेंडर भी समाज का अंग ही है उसे भेदभाव की दृष्टि से न देख कर उन्हें ही हम में से एक समझें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महेंन्द्र भीष्म, किन्नर कथा, सामायिक प्रकाशन संस्करण,2016,नई दिल्ली 11002, पृ 12

2. वही, पृ.51 3. वही, पृ.64 4. वही, पृ.51

5. वही, पृ.66 6. वही, पृ.66

सहायक ग्रन्थ सूची

1. महेंन्द्र भीष्म, किन्नर कथा, सामायिक प्रकाशन संस्करण,2016,नई दिल्ली 11002,
2. शरद सिंह, थर्ड जेंडर विमर्श, समायिक प्रकाशन, 2019
3. डॉ इकरार अहमद ,किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में, अनुसंधान पब्लिशेर्स, 2017

शोध निर्देशिका : डॉ शोभना कोक्कडन

शोध छात्रा , अविनाशीलिंगम इनस्टीट्यूट फॉर होम साईन्स एंड हयर एजुकेशन फॉर विमेन, कोयम्बत्तूर-641043

"बिरहोर" आदिम जनजाति परिवारों का आहार प्रतिरूप एवं पोषण स्तर का मूल्यांकन जशपुर जिला के विशेष संदर्भ में

लोकेष पटेल

शोध सारांश : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों की आहार प्रतिरूप एवं पोषण स्तर का अध्ययन जशपुर जिले के विशेष संदर्भ में किया गया है। जशपुर जिला के सर्वेक्षित बिरहोर अत्यन्त पिछडी जनजाति से संबंधित परिवार में जीवन-यापन पर उनके आय का सीधा प्रभाव पड़ता है। बिरहोर परिवारों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति औसत उपभोग 1970 किलो कैलोरी है, वहीं प्रोटीन का 69.29 ग्राम, विटामिन ए 4965.87 विटामिन 'बी2' 2.14 मिलीग्राम तथा विटामिन 'सी' 91.19 मिलीग्राम, कैल्शियम 301.48 मिली ग्राम, आयरन 2.63 मिली ग्राम, कार्बोहाइड्रेट 407.31 मिली ग्राम, वसा 23.6 मिली प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन प्राप्त है। सर्वेक्षित बिरहोर आदिम जनजाति परिवार में पोषण स्तर निम्न है, भोजन में पोषक तत्वों की अनुशंसित मात्रा से कम है।

शब्द कुन्जीः आहार प्रतिरूप, पोषण स्तर, स्वास्थ्य दशाएँ एवं समस्याओं का समाधान हेतु सुझाव एवं नियोजन ।

प्रस्तावना : मानव शरीर को स्वस्थ एवं क्रियाशील जीवन व्यतीत करने के लिए उचित पोषण की आवश्यकता होती है। किसी देश की उन्नति वहाँ के मानव संसाधन पर निर्भर होती है। एक स्वस्थ नागरिक ही स्वस्थ एवं विकासशील समाज का निर्माण कर सकता है। मनुष्य को यदि उचित मात्रा में भोजन तथा सम्पूर्ण पोषक तत्व प्राप्त नहीं होने की स्थिति में पोषक तत्वों के न्यूनता एवं अधिकता के फलस्वरूप मानव का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। परिणामस्वरूप अल्पपोषण/कुपोषण की स्थिति में अनेक गंभीर बिमारियों से ग्रसित हो जाते हैं, बिरहोर जनजाति की जीवन शैली अन्य ग्रामीणों में निवासरत् समुदाय से पृथक होते है। अस्तु इन्हीं तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए जशपुर जिले के 'बिरहोर' आदिम जनजाति परिवारों में दैनिक प्रतिव्यक्ति आहार उपलब्धता प्राप्त कर पोषण स्तर का मूल्याकन करने का एक प्रयास है, जिसके परिकलन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर शासन को नियोजन हेतु सुझाव प्रस्तुत किया जा सके।

अध्ययन क्षेत्र : छत्तीसगढ़ में जशपुर जिला का 22017 से 23015 उत्तरी अक्षांश एवं 83030 से 84024 पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है। प्रदेश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 6457.41 वर्ग किमी है। प्रदेश दो भागों में विभाजित है यथा प्रदेश के उपर भाग पर उपर घाट एवं निचले भागों को नीच घाट के नाम से जाना जाता है। प्रदेश राष्ट्रीय मार्ग क्रमांक-43 पर 'ऊपर घाट' जशपुर एवं 'नीचघाट' में पत्थलगाँव, कांसाबेल एवं कुनकुरी तहसील से होकर गुजरती हैं। जिला जशपुर समुद्र तल से 171 मीटर उंचाई पर स्थित है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. अध्ययन क्षेत्र के 'बिरहोर' आदिम जनजातियों की पहचान करना। 2. बिरहोर आदिम जनजातियों में खाद्यान्न उपलब्धता की जानकारी प्राप्त करना। 3. प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पोषण स्तर का परिकलन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

1. भोजन में कैलोरी तथा पोषक तत्वों की उचित मात्रा का सीधा संबंध परिवार की आय से होता है। 2. आदिम जनजाति 'बिरहोर' में शिक्षा का स्तर निम्न होता है। 3. 'बिरहोर' आदिम जनजाति परिवारों में पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर न्यून होता है।

आँकड़ों के स्त्रोत एवं विधितंत्र : प्रस्तुत शोध-पत्र प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है। अध्ययन हेतु जशपुर जिला के 4 तहसील जशपुर, बगीचा, कुनकुरी, कांसाबेल के कुल 9 ग्रामों का चयन उद्देश्यपूर्ण पद्धति द्वारा अनुसूची के माध्यम से 'बिरहोर' आदिम जनजाति परिवारों में आहार एवं पोषण प्रतिरूप का परिकलन भारतीय चिकित्सा परिषद् (ICMR) द्वारा निर्धारित मानकों के आधार पर वयस्क इकाई गुणांक द्वारा आहार उपभोग की मात्रा के आधार पर पोषण स्तर का निर्धारण किया गया।

आहार उपभोग प्रतिस्प : मानव जीवन के अस्तित्व के लिए हवा पानी के पश्चात् भोजन का स्थान है। मानव प्रारम्भ से ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भोजन के लिए वनस्पति, पशु-पक्षियों एवं कीड़े-मकोड़ों पर आश्रित रहता था, परन्तु अब भोजन के अनेक साधन विकसित हो गये हैं जिससे अब अधिक भटकने की आवश्यकता नहीं है। अब भोजन मात्र उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि सुस्वास्थ्य के लिए भोज्य पदार्थो की आवश्यकता होती है उन्हें चुनकर खाया जाता है क्योंकि मानव विकास एवं शरीरिक वृद्धि पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार पर निर्भर करता है (सिंघाई,2010)। उल्लेखनीय है कि बिरहोर जनजाति अन्य जातीय एवं ग्रामीण जनसंख्या से खान पान एवं जीवन शैली से पृथक है साथ एवं आज भी वनों पर आश्रित है।

प्रातः कालीन नाश्ता : बिरहोर आदिम जनजाति परिवार प्रातः कालीन नाश्ता में बोरे बासी का उपभोग करते है। बोरे बासी बनाने के लिए रात में चावल को पकाकर ठंडा होने के पश्चात मिट्टी के बर्तन में पानी में डुबाकर रखा जाता है। प्रातः काल में उपलब्ध होने पर टमाटर की चटनी, हरी मिर्च, अमारी चटनी/आम चटनी/इमली की चटनी के साथ 'बोरे बासी' का सेवन किया जाता है। 'बोरे बासी' से इन्हें कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है।

दोपहर का भोजन : सर्वेक्षित ग्रामों के बिरहोर आदिम जनजाति परिवार चावल (भात) का सेवन अधिक करते हैं। चावल के साथ शासन द्वारा प्राप्त चना दाल या अधिकतर साग-भाजीयों जैसे कोयलार भाजी, चिंटी भाजी, मुचरी भाजी, तिता भाजी, चेंच भाजी, चरकन्नी भाजी, बेग भाजी, करू भाजी, सारू भाजी, फुटकल भाजी, तिलसा फूल, गिरहुल फुल, नीम फूल, हीरमिचा भाजी, मूड़ी भाजी, चरोटा भाजी, का सेवन करते है।

रात्रिकालीन भोजन : सर्वेक्षित ग्रामों के बिरहोर आदिम जनजाति परिवार रात में चावल एवं सब्जी का उपभोग करते हैं, साथ ही कभी-कभी या सप्ताह में एक या दो बार रात्रि कालीन भोजन में शिकार द्वारा प्राप्त मांस-मछली का सेवन करते है जिसमें मुख्यतः सुअर, मुर्गी, बकरी का सेवन किया जाता है। बिरहोर परिवार बेमता (माटा) सब्जी का सेवन रात्री के समय अधिक करते है।

खाद्य-पदार्थो का उपभोग प्रतिस्प

चावल उपभोग प्रतिस्प : बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों का मुख्य भोजन चावल है, चावल प्राप्ति के तीन स्त्रोत है। कृषि, सप्ताहिक बजार एवं छत्तीसगढ़ सरकार की अन्त्योदय योजना से प्राप्त करते है। चावल कार्बोहाइड्रेट का उत्तम स्त्रोत है, साथ ही प्रोटीन (8.5 ग्राम), उर्जा (349 किलो कैलोरी), कैल्शियम (10 मिग्रा), फास्फोरस (280 मिग्रा), आयरन (2.8मिग्रा) कम मात्रा में मिलती हैं। चयनित क्षेत्र में चावल का औसत उपभोग प्रतिदिन/प्रतिव्यक्ति451.20 ग्राम है, वहीं चावल उपभोग की अधिकतम मात्रा प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति (591.43 ग्राम) सर्वेक्षित ग्राम घोघर में प्राप्त हुआ है। सर्वेक्षित ग्राम घोघर में अधिकता का मुख्य कारण उच्च आय वर्ग (उ20,000) की अधिकता है जिसके फलस्वस्प चावल उपभोग अधिक पाया गया। वहीं ग्राम डबनीपानी में निम्न आय वर्ग (इ10000) में 346.15 ग्राम पाया गया।

सब्जियाँ उपभोग प्रतिस्प : बिरहोर आदिम जनजाति परिवार सब्जियों में जीमिकांदा, खेखसी, कटहल, डोड़का, कोचाई, मुनगा एवं बन करेला आदि प्रमुख है। अध्ययन

क्षेत्र में बिरहोर आदिम जनजातियों द्वारा साग-सब्जी साप्ताहिक बाजार एवं वनों से प्राप्त किया जाता है। बिरहोर परिवार में सुखाई गई सब्जियों का उपभोग करते है, जिसे स्थानीय भाषा में 'सुखवा' कहते है। अध्ययन क्षेत्र के निवासरत बिरहोर आदिम जनाजाति परिवार मौसमी साग-सब्जी का उपभोग करते है। सर्वेक्षित परिवारों में सब्जियों का उपभोग सभी आय वर्ग के परिवार करते हैं, जिसमें औसत उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 82.28 ग्राम प्राप्त हुआ है, जो संतुलित मात्रा (100 ग्राम) से कम है। इसका प्रमुख कारण सर्वेक्षित परिवार 'बोरे बासी' का उपभोग अमारी चटनी या नमक के साथ ही कर लेते है, जिससे उन्हें सब्जियों की आवश्यकता कम होती है। सर्वेक्षित ग्रामों में साग-सब्जियों का उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति सर्वाधिक दसडूमरटोली (135.00 ग्राम), के उच्च आय वर्ग (उ20,000) में पाया गया है, वहीं सबसे कम निम्न आय वर्ग (इ10000) ग्राम बेहराखार (60.82 ग्राम) में प्राप्त हुआ है।

अण्डा, माँस-मछली उपभोग प्रतिरूप : जनजातियों को मांस बहुत प्रिय होता है। आखेट कर हर तरह के जानवारों व पक्षियों का उपभोग करते है। बिरहोर आदिम जनजाति परिवार बंदरों के शिकार करने में माहिर होते हैं, एवं बन्दर का मांस खाते हैं, परन्तु अब शिकार पर प्रतिबन्ध होने से शिकार करने की प्रवृत्ति में कमी आई है। अध्ययन क्षेत्र में अण्डा, माँस-मछली का औसत उपभोग 23.25 ग्राम प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति पाया गया जो आई.सी.एम.आर द्वारा निर्धारित मान 30 ग्राम प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति उपभोग की तुलना में कम है। अध्ययन क्षेत्र के बिरहोर अदिम जनजाति परिवार में अण्डा, माँस-मछली का सर्वाधिक उपभोग घोघर ग्राम (बगीचा तहसील) के उच्च आय वर्ग (>20,000) परिवारों में 48 ग्राम प्रतिव्यक्ति/प्रतिदिन पाया गया है, जिसका मुख्य कारण आय में अधिकता के फलस्वरूप सप्ताहिक बजार से अण्डा, माँस-मछली का क्रय करके उपभोग करते है। जबकि ग्राम-बेहराखार (<10000) कुनकुरी तहसील के निम्न आय वर्ग परिवारों में सबसे कम (16 ग्राम) प्रतिदिन/प्रतिव्यक्ति औसत उपभोग पाया गया है, जिसका प्रमुख कारण बिरहोर आदिम जनजातियों में रस्सी निमार्ण कार्य कम किया जाता है जिससे आय निम्न होने के कारण अण्डा, माँस, मछली उपभोग की मात्रा में कम पाया गया।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बिरहोर जनजाति वर्ग में सभी खाद्य पदार्थ निर्धारित मानक आवश्यकता से अपेक्षाकृत कम पाये गये है। जिसका मुख्य कारण गरीबी, खाद्य असुरक्षा, अशिक्षा, रोग एवं संक्रमण से ग्रसित होना है। बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों में गरीबी के कारण उचित भोजन, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवाओं तक नहीं पहुँच पाती है, जो उनके पोषण स्तर को प्रभावित करती है। सर्वेक्षित बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों मे अशिक्षा के कारण पोषण के महत्व, आहार के गुण, भोजन के संरक्षण एवं स्वच्छता के तरीकों की जानकारी नहीं है। इससे वे अपने परिवार के पोषण स्तर को बढ़ाने के लिए उचित निर्णय नहीं ले पाते हैं। रोग एवं संक्रमण बिरहोर आदिम जनजाति जंगलो में निवास करती है जिससे स्वच्छ जल के अभाव के कारण रोग एवं संक्रमण अधिक पाया गया है जिसे उनका भोजन पाचन, अवशोषण एवं उपयोग करने की क्षमता कम है। इसके अलावा, रोग एवं संक्रमण के इलाज में लोगों को अधिक पोषक तत्वों की जरूरत होती है जो बिरहोर जनजाति को उपलब्ध नहीं होती है।

सर्वेक्षित परिवारों का पूर्व में खाद्य उपलब्धता एंव उसका मानक आवश्यकता से अन्तर ज्ञात किया गया है, किन्तु प्रतिदिन खाद्य उपलब्धता के आधार पर ही पोषण स्तर का मापन नहीं किया जा सकता क्योकि यह आवश्यक नहीं कि जहाँ अनाज अधिक उपलब्ध हो वहाँ पोषण तत्व भी अधिक प्राप्त होगें । अत? यह आवश्यक हो जाता है कि उपलब्ध खाद्यान्नों को पोषण तत्वों में परिवर्तित कर विश्लेषण किया

जाय । प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में सर्वेक्षित परिवारों में पोषक तत्वों की उपलब्धता अधोलिखित है। एवं

पोषक तत्व का उपभोग प्रतिस्प : प्रत्येक मानव को चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, स्तर का क्यों न हों उसे शरीर द्वारा विभिन्न कार्यो को करने एवं स्वस्थ जीवन जीने के लिए अनेक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों में कैलोरी, प्रोटीन, कैल्शियम, विटामिन, आयरन, कार्बोहाइड्रेट, वसा आदि प्रमुख है। ये पोषक तत्व रासायनिक पदार्थ होते है जो हमारे दैनिक आहार में पाए जाते है (सी.गोपालन 2016)।

शरीर के लिए हम जो भी भोजन करते हैं वह पोषण से परिपूर्ण होना आवश्यक है, जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहे। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा प्रति 100 ग्राम भोज्य पदार्थो में विद्यमान पोषक तत्त्वों की मात्रा निश्चित की गयी है। बिरहोर आदिम जनजाति परिवार में निर्धनता एवं अशिक्षा के कारण भोजन की उचित मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती, जिसके कारण इनमें अल्प पोषण एवं कुपोषण की स्थिति निर्मित होती है। अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षित बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपभोग प्रतिस्प आय वर्ग के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

कैलोरी उपभोग प्रतिस्प : कैलोरी उष्मा का एक रूप है, जो शरीर को उर्जा प्रदान करती है। बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों में कैलोरी का मुख्य स्रोत चावल है, क्योकि चावल का उपभोग सभी बिरहोर परिवार करते है। अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षित ग्रामों में कैलोरी का औसत उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 1904.69 है जो अनुशंसित मात्रा से -495.31 कैलोरी कम है, वहीं से सर्वाधिक उपभोग भितघरा ग्राम (बगीचा तहसील) के उच्च आय वर्ग (उ20,000) परिवारों में 4200.26 ग्राम प्रतिव्यक्ति/प्रतिदिन पाया गया है, जबकि ग्राम-घोघर (इ10000) बगीचा तहसील के निम्न आय वर्ग परिवारों में सबसे कम (1263.98 ग्राम) प्रतिदिन/ प्रतिव्यक्ति औसत उपभोग पाया गया है, जिसका मुख्य कारण आय में कमी का होना है।

प्रोटीन उपभोग प्रतिरूप : प्रोटीन शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। प्रोटीन हमारे शरीर मांसपेशियों, उतकों, हार्मोन, एंजाइम एवं प्रतिरक्षा प्रणाली के निर्माण में सहायक होती है। अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षित बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों में प्रोटीन का औसत उपभोग 69.29 प्रतिशत पाया गया जो अनुशंसित मात्रा से 14 ग्राम अधिक प्राप्त हुआ। अध्ययन क्षेत्र के बिरहोर अदिम जनजाति परिवार में प्रोटीन का सर्वाधिक उपभोग भीतघरा ग्राम (बगीचा तहसील) के उच्च आय वर्ग (उ20,000) परिवारों में 95.49 ग्राम प्रतिव्यक्ति/प्रतिदिन पाया गया है, जबकि ग्राम-दसडूमरटोली (इ 10000) जशपुर तहसील के निम्न आय वर्ग परिवारों में सबसे कम (48.55 ग्राम) प्रतिदिन/प्रतिव्यक्ति औसत उपभोग पाया गया है, जिसका मुख्य कारण आय में अधिकता के फलस्वरूप सप्ताहिक बजार से अण्डा, माँस-मछली का क्रय करके उपभोग करते है, साथ ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत शासन द्वारा चना का वितरण प्रतिमाह 02 किलो 05 रू . प्रतिकिलो की दर से वितरण किया जाता है जिससे प्रोटीन की मात्रा में अधिकता पाया गया है।

विटामिन 'ए' उपभोग प्रतिस्प : मानव शरीर में विटामिन 'ए' अति अल्पमात्रा में रहती है परन्तु शरीर के सभी मुख्य कार्यो में विटामिन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विटामिन 'ए' त्वचा, नाक, मुँह, गले, आँख कान, और अन्य अंगों की अंदर की पर्त को स्वस्थ रखता है।

सर्वेक्षित परिवारों में विटामिन 'ए' की औसत प्राप्ति 4965.87 ब्रह है। जो कि अनुशंसित मात्रा 2500 ब्रह से अधिक है। विटामिन ए की अधिकता का मुख्य कारण बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों का वनों एवं नदी/नालों पर आश्रित होना है, पोषक तत्व एवं विटामिन युक्त खाद्य उपलब्धता देखी गई है।

विटामिन 'बी' उपभोग प्रतिरूप : विटामिन बी2 राइबोफ्लोबिन एक प्रकार का विटामिन है, जो शरीर के लिए अति आवश्यक है। विटामिन बी2 शरीर में उर्जा का स्रोत है, एवं लाल रक्त कोशिकाओं, आंखों, त्वचा एवं नशों के स्वास्थ्य को बनाए रखता है।

अध्ययन क्षेत्र में विटामिन बी2 की औसत प्राप्ति 2.14 मि.ग्राम. प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन प्राप्त हुआ है। अनुशंसित मात्रा 1.32 मि.ग्रा. से 0.82 मि.ग्रा. अधिक है। अधिकता का मुख्य कारण विटामिन बी2 तत्वों से युक्त खाद्यान्न उपलब्धता में वृद्धि एवं इन खाद्यान्न पदार्थो की प्राप्ति प्रकृति प्रदत्त स्रोत से होना ळें

विटामिन 'सी' उपभोग प्रतिरूप : विटामिन सी मानव शरीर को रोग ग्रसित होने से बचाता है। विटामिन 'सी' की कमी से थकावट, कमजोरी, भूख न लगना, श्वास में तकलीफ तथा सर्दी की शिकायत रहती है। अध्ययन क्षेत्र में विटामिन सी की औसत प्राप्ति 91.19 मि.ग्रा. प्रतिव्यक्तिप्रतिदिन प्राप्त हुआ है। जो अनुशंसित मात्रा 50 मि.ग्रा. से 41.19 मि.ग्रा. अधिक पाया गया, जिसका मुख्य कारण विटामिन 'सी' प्रकृतिजन्य सर्वेत्तम साधन है, जो स्थानीय जंगलों से प्राप्त फलों एवं भाजियों से बहुतायत पाया जाता है।

कैल्शयम उपभोग प्रतिरूप : कैल्शियम हमारे शरीर के लिए महत्वपूर्ण मिनरल है, शरीर की हडिड्यों, दातों, मांसपेशियों, हृदय और रक्त को स्वस्थ रखने में मदद करता है। कैल्शियम का औसत उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 301.48 मिली ग्राम है, जो अनुशंसित मात्रा से से कम है।

आयरन उपभोग प्रतिरूप : आयरन शरीर के सभी क्रोमेटिक पदार्थो का एक अंग है, जिससे शरीर कोष्ठों की आक्सीजन एवं श्वास क्रिया नियमित रूप से संचालित होती है। आयरन का औसत उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 2.63 मिली ग्राम है जो अनुशंसित मात्रा से 22.37 मिली ग्राम कम है।

कार्बोहाइडैट उपभोग प्रतिरूप : कार्बोहाइड्रेट का निमार्ण कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन से होता है, जो प्रकृति में अधिकांश पाये जाते है। कार्बोहाइड्रेट का औसत उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 407.31मिली ग्राम है जो अनुशंसित मात्रा से 12.69 मिली ग्राम कम है।

वसा उपभोग प्रतिरूप : यह पेड़-पौधों एवं प्राणियों की कोशिकाओं की कोशिका भित्ति में बहुतायत में पाया जाता है। प्राणी अपना शक्ति संग्रह वसीय तन्तुओं में करते है। वसा का औसत उपभोग प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 23.6 मिली ग्राम है जो अनुशंसित मात्रा से 3.6 मिली ग्राम अधिक है।

निष्कर्ष : विश्लेषण से स्पष्ट है, कि बिरहोर आदिम जनजाति समुदाय द्वारा आखेट कर हर प्रकार के पक्षियों एवं जानवरो का उपभोग करते हैं। इन्हें शिकार के प्रति लगाव होता है। वहीं मछलियों का आखेट एवं उपभोग निकटम नदी/नालों से होता है एवं पोषक तत्वों से युक्त खाद्यान्न उपलब्धता में वृद्धि एवं हरे पत्तेदार सब्जी में प्रोटिन, विटामिन ए विटामिन 'बी2', एवं विटामिन सी पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होते है। इन सब पोषक तत्वों का प्रभाव सर्वेक्षित बिरहोर आदिम जनजातियों के पोषण स्तर निर्धारण पोषण सूचकांक के आधार पर किया गया जिस बिरहोर आदिम जनजाति परिवारों में आज भी घोर गरीबी व्याप्त है जिसके कारण मानक आवश्यकता से खाद्य पदार्थ एवं पोषक तत्वों में कमी प्राप्त हुई है। परिणामस्वरूप इनकी अधिकांश जनसंख्या कुपोषण एवं अल्पपोषण से ग्रसित है।

सुझाव/समाधान :

1. अध्ययन से स्पष्ट है कि बिरहोर आदिम जनजाति परिवार पौष्टिक एवं संतुलित आहार से वंचित हैं। अतः इनके घेार कुपोषण को दूर करने हेतु शासन एवं गैर सरकारी संगठन की देखरेख में इन्हें अनाज, दाल, अंडे एवं हरी सब्जियाँ कम से कम तीन वर्ष तक लगातार प्रत्येक दिन उपलब्ध कराया जाये जिससे पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर में सुधार आ सके।

2. शासकीय एवं गैर शासकीय संस्थाओं के माध्यम से बिरहोर आदिम जनजाति के बिखराव को रोककर एक ही स्थान पर ग्राम को विकसित किया जावें।

3. खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए भी प्रयास होना चाहिए जिससे खाद्यान्न समस्या का हल निकालकर अच्छा पोषण युक्त आहार उपलब्ध हो सकें।

4. स्थिति, स्वास्थ्य एवं पोषण से उभारने के लिए शासन ने ठोस कदम उठाकर शराब को पूर्णतः प्रतिबंधित कर देना चाहिए।

5. बिरहोर आदिम जनजाति परिवार रस्सियाँ बनाने एवं बांस से बने वस्तु बनाने में पारंगत है। अतः इन्हें उपरोक्त आर्थिक गतिविधियों का आधुनिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। तत्पश्चात परोक्तकार्यो हेतु आधुनिक उपकरण एवं कच्चा माल उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इनके द्वारा बनाये गये वस्तुओं को शासन द्वारा क्रय कर उसे बाजार में उतारना चाहिए। चूँकि बिरहोर परिवारों की आर्थिक दशा अत्यंत दयनीय है, दो वक्त का खाना भी प्राप्त नहीं हो पाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

Gole, Uma (2014):"Food Security Conditions in Chhattisgarh" Research Journal of Science and Technology, Publisher A&V Publications, vol-6,pp-1-5

Gole,Uma (2015):"Nutritional Status of the Oraon Tribes of Jaspur District, Chhattisgarh international journal of scientific and Research, PublisherA & V Publications, vol-6,pp-91

सिंघाई, जी.सी. (1999): चिकित्सा भूगोल वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर, संस्करण द्वितीय।

एम.पी.गुप्ता एवं उमा गोले (2005): खाद्य पदार्थो की उपलब्धता एवं पोषण स्तर मस्तूरी तहसील (छत्तीसगढ़) के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश भूगोले पत्रिका, अंक-10, पृष्ठ 41-46।

पाण्डेय एवं लकड़ा (2000) बिरहोर जनजाति में मातृ एवं बाल स्वास्थ्य रक्षा उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर,अंक-83, पृ.सं.113-116.

एल.एन.वर्मा एवं डॉ. एस.आर.कमलेश (2002) मानवमितीय एवं पोषण स्तर का भौगोलिक अध्ययन? रायगढ़ जिले के चयनित ग्रामों का एक प्रतीक अध्ययन उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, अंक-38, पृ.सं.53-56.

व्ही.के.पटेल एवं उमा गोले (2003) : ग्रामीण आहार प्रतिरूप एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता बिलासपुर जिले (छ.ग) के ग्रामों का प्रतिक अध्ययन, चर्मण्वती भूगोल शोध पत्रिका, अंक-3, पृष्ठ-58-61

शर्मा, रंजना (2003): बिलासपुर जिले में जनसंख्या वृद्धि एवं आहार उपलब्धता उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, अंक-38,

एम.पी.गुप्त एवं श्यामबती सांडील (2010) बैहर पठार में खाद्य उपलब्धता एवं पोषण स्तर, उत्तर प्रदेश ज्योग्राफिकल सोसयटी ऑफ इंडिया, अंक-15।

सी. गोपालन, बी.वी.रामशास्त्री, एवं एम.सी. बालसुब्रमणियन, तथा संशोधन एवं अद्यतनीकरणः बी.एस. नरसिंग राव, वाई.जी. देवस्थले एवं के.सी.पंत) अनुवादक मनीष मोहन गोरेः (2016) भारतीय खाद्य पदार्थो के पोषण आई.सी.एम.आर. मान राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद।

जितेन्द्र कुमार प्रेमी एवं अरूण कुमार (2017) छत्तीसगढ़ का विशेष पिछड़ा जनजातीय समूह बिरहोर एक नृजातिवृतांतात्मक परिचय, मानव इथनोग्राफिक एण्ड फोक क्चर सोसायटी (लखनउ) सीरियल पब्लिकेशन (दिल्ली) वर्षः35 नं. 02 पृष्ठ-01-18

एक्का, शिवनाथ (2022) उत्तरी-पूर्वी छत्तीसगढ़ में पहाड़ी कोरवा आदिम जनजाति की सामाजिक-आर्थिक

दशाएँः एक भौगोलिक अध्ययन, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

Lokesh Patel, Dr.Uma Gole
Research Scholar, Professor
School of Studies in Geography
Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur,
Chattisgarh

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर **मूल : मंजु वेल्लायणि** **अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम**

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

षाजु और बिजु के शब्द सुनने पर ही परिवेश पर ध्यान आया था। बालगोपाल के द्‌वारा जान गया कि यहाँ है। तंबू में लेट नहीं पाता। साई मीरा का दोस्त सर्दी के मारे चिल्ला रहा है। सही ढंग से सोना भी नहीं हुआ। शिकायत करते हुए वे लोग जॉबियाङ् पर्वत के उस ओर के गोंपा को कैमरा में कैद कर लिया।

पत्थरों के बीच में बिना किसी की दृष्टि पड़े छिपकर खड़े हंसते फूल। पीले एवं लाल रंग के अनामी पुष्प। उनका सौंदर्य देखकर वे लोग जांबियाङ् पर्वत पर फैले सफ़ेद हिम के चिन ले रहे हैं।

तिब्बत के लोगों को काङ्गरिनपोचे है कैलास। कैलास देखनेवाले गणितज्ञ को वह पिरमिड़ का ज्यामितीय रूप लगता है। भक्त को शिववाहन ऋषभ का चेहरा। ऊपरीभाग वासुकी जैसा भी लगता है। जहाँ पर हिम परत नहीं है- उन दागों को चौदह सीढ़ीनुमा सोपान और मोक्षमार्ग के रूप में संकल्पना करनेवाले भी हैं।

पूरे विश्व में देरापुक में दृश्यमान उत्तरकैलास ही परिचित है। साइटों, चित्रों एवं वर्णनों में ज़्यादातर यही चित्र है। हर पल विभिन्न चेहरा कभी गणेश का सूँड, जाटाधारी शिवजी के अर्धनिमीलित नेत्र सहित चेहरा, किरीटधारिणी पार्वती, ऋषिगण सरीखे - किसी भी रूप के दर्शन कर नमन कर सकता है।

कैलास परिक्रमा में तीन चेहरे नज़र आते हैं। दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिङ्मुख। पूर्व अप्राप्य है। पश्चिम भाग तना पत्थर है। इसलिए ही सबसे ज़्यादा दर्शन सौभाग्य प्रदान करते एवं स्तुत्य कहलाने वाले वटक्कुमनाथ ही है।

हिमरहित मध्यभाग में शिव मंदिरों में शिवलिंग के सामने तैयार किए अर्धचंद्राकृति से बने हिम के सुंदर चित्र। एक, दो, तीन, चार से आठ तक गिनने पर ही आँखों में दबाव पड़ने लगा। आँख नम हो रही है।

शिवचैतन्य विहार भूमि कैलास और कदंबवन थे। दोनों शिवपाद स्पर्श प्राप्त पुण्यभूमि। जन्म से ही विरोधी बने पंछी मृगादि कदंब वन में स्वच्छंदता से विहार करते देख देवेंद्र अचंभे में पड गया। भूख न लगते- पूछते हुए बछड़ों को दूध देती मादा तेंदुए। मृगों को एकत्रित कर विहार करते बाघ। गम लगी भूमि के ऊपर रेंगते साँप के बच्चों को धूप न लगने हेतु अपने पंखों को छाता-सा फैलाता गरुड़। बेहोश हो पडे हाथियों की आँखों में नज़र आती मदजल गंध का अनुगमन कर आते भ्रमर झुंडों को अपना जम हिलाकर भगाते शेर। आनंदवन के अलावा और कहाँ इस तरह के दृश्य देख सकता है। नीरवता के सहस्रदल में खिली सुगंध की अनुभूति हो जाए। कैलास के इन सीढ़ियों एवं दृश्यों में वही सौंदर्य एवं प्रशांतता अनुभूत हो रहे हैं।

टेंट में हमारे आते आते वक्त भी अतुल ठंड से ठिठुर रहा था। चिल्लाहट भी है। कहीं खोए मोबाइल को तंबू के अंदर ढूँढ रहा है। साईमीरा ज्यों का त्यों बैठी है। षाजु ने अतुल की ऊँगलियों को पकड़ा। बड़ी राहत के साथ उसने हमें पुनः पुनः देखा। चिल्लाहट धीरे धीरे फीकी हँसी के रूप में परिवर्तित हो गई।

मलयालियों को अतुल ने ज्यादा महत्त्व नहीं दे रखा था। मीरा ने कहा कि शायद अब वह बादल गया होगा। अतुल का बयान यह है कि ईश्वर के अपने प्रांत के मलयाली लोगों ने सातान को किराए

पर देखा है। शिक्षा एवं स्वच्छता में आगे हो सकता है लेकिन इधर उधर थूकता है। मौका मिलने पर पिसाव करता है। उस बात में कुत्ते को हार पाएँगे। पर खन्ना उसका अनुकूल नहीं था। केरल की नदियों और झीलों में ईश्वर अपना चेहरा देखता है। केरल का बड़ा किया हुआ छायाचित्र होगा स्वर्ग। अज्ञानी और अमान्य व्यक्ति कहाँ नहीं होते? खन्ना के वादों से तटस्थ भाव से मीरा सम्मिलित हुई। षाजु द्वारा एक वैद्य के समान हल्के से मसाज करना अतुल को भाया। हाथ पकडकर हिलाते हुए उसने अपनी शुक्रिया अदा की।

देरापुक कैंप में कहीं भी बिजली नहीं थी। मोमबत्ती की रोशनी मात्र थी। सबके हाथों में टॉर्च होने के कारण अंधेरे से उतना डर नहीं। सर्दी से ठिठुरने के बीच में साईमीरा ने एक प्रार्थना की। बरसाती पहने पर भी मूसलधार बारिश से कपड़े भींग गए। उसे बदलना है और कोई रास्ता नहीं है। इसलिए ही कपड़े बदलने के वक्त तक हर आदमी आँखे मूँदकर बैठना चाहिए। उनका खुला मन और स्वभाव हमें पसंद आ गया। हर व्यक्ति उनकी प्रार्थना मानते हुए आँखें मूँदकर बैठ गया। मीरा की जगह कोई मलयाली स्त्री होती तो कितने ही घुमाफिराव व व्यर्थ संदेह उत्पन्न करती।

भारतीय पुराण एवं कथाएँ कुछेक जानने के कारण से ही साईमीरा ने आँखे मूँदकर बैठने को कहा होगा। कामदेव की चंचलताएँ ही हों लेकिन उसके लिए सभी प्रकार का साथ कामदेव देते होंगे। सुब्रह्मण्य के जन्म होने हेतु कामदेव ने कामवैरी महेश्वर की ओर अपने पुष्पबाण भेज दिए। ब्रह्मा की मानसपुत्री संध्या को प्रजापति एवं देवगण ने मोह लिया। परेशान होकर संध्या एक मादा हिरण के रूप में पलायन करते समय ब्रह्मदेव एक हिरण के रूप में उसके पीछे हो लिए। उसपर क्रुद्ध शिव ने तीर मारकर हिरण का सिर काट लिया। गलती का एहसास करके ब्रह्मा ने स्वरूप धारण कर कैलासनाथ का प्रणाम कर उनसे माफ़ी माँगी। उसपर करुणार्द्र तृनेत्र ने तीर को 'आर्द्रा' नामक नक्षत्र बना लिया। कटे गए हिरण के सिर को 'मकयिरम' नक्षत्र भी बना दिया।

मीरा के अब आँखें खोल सकते हैं - कहने पर भी कुछ समय के बाद ही सबने आँखें खोलीं। इसके बीच रात्रि भोजन लेकर षेरपा लोग आ पहुँचे। इतनी ऊँचाई में इस ठिठुरती सर्दी में खाना पकाकर देनेवाले षेर्पाओं को हमने मन से धन्यवाद कहा। रोटी, आलू की सब्जी, बेंगन-सब्जी आदि। स्वाद कम था फिर भी रोज़ से ज़्यादा खा लिया। लोगों द्वारा एक और सूप् की माँग होने पर उसे भी वे लोग ले आए।

डारजी ने याद दिलायी कि भोजन करके जल्दी सोना है और सुबह ही सुतुलपक की ओर रवाना होना है। समय सात होने पर भी साँझ अब हुई नहीं है। मीरा एवं उनके साथियों का विश्वास है कि देरापुक की यात्रा इतनी कठिन होने के कारण ही सुत्तुलपुक की ओर ज़्यादा रुकावटें नहीं आयेंगी। सुत्तुलपुक के लिए बाईस किलोमीटर की दूरी है। जितना देरापुक में है उससे हल्का या ज़्यादा। इसके बीच में है उन्नीस हज़ार से अधिक फीट में स्थित डोलमा पहाडी प्रांत। प्राणवायु की कमी सबसे ज़्यादा महसूस होते स्थान।

रात को दस बजे तक तंबू से निकलकर कैलास दर्शन करना है। जीवन में प्राप्त होनेवाला अपूर्व दृश्य एवं अनुभव होगा। षाजु एवं बिजु उसपर सहमत थे। तब तक आराम करने के लिए कंबल ओढ़े लेटे। मीरा, अतुल एवं खन्ना कंबल ओढे ही चारपाई में बैठे हैं। खन्ना के खोए हुए चलभाष के बारे में वे आपस में बात कर रहे हैं। कई प्रमुख संपर्क उसमें थे। खन्ना को दुःख उस बात को लेकर था। देवभूमि में कुछ भी खोया नहीं जाता। चलभाष भी वापस मिल जाएगा। मीरा का यही विश्वास था।

चलभाष से बातचीत सीधे तिब्बती योगियों - लामों की सिद्धियों पर जा पहुँची। मिलरेपा के अंत्य क्षण भी चर्चा का विषय बना। मन उन पलों के इर्दगर्द मंडराया।

गेषे नामक पंडित ने दही में ज़हर मिलाकर अपनी रखैल के हाथ में देकर उसे ड्रिन गुफा में भेज दिया। वह मिलरेपा की जान लेने के लिए ही था। उपहार स्वरूप उसे हीरे का प्रलोभ दिया गया। शुरु में मिलरेपा ने ज़हर नहीं पिया। बाद में पी लिया। धनमोही उस स्त्री को हीरा प्राप्त होने के लिए।

(क्रमशः)

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

तेरहवाँ देवपद - विश्वविद्यालय में

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

श्री चित्तिरा तिरुनाल महाराज ने तिरुवनंतपुरम में 1937 में तिरुवितांकूर विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। यह केरल का सर्वप्रथम सर्वोच्च विद्यापीठ है। इसके साथ हमारे शैक्षणिक क्षेत्र में बहुत बडा परिवर्तन हुआ। अभी तक केरल के विद्यार्थियों को अपनी उच्च शिक्षा के लिए मद्रास (चेन्नै) विश्वविद्यालय में भर्ती होना था। तिरुवितांकूर विश्वविद्यालय का यह नाम बाद में दो बार बदल दिए गए। तिरुवितांकूर और कोच्चि नामक दो रियासतों को मिलाकर एक ही शासक के अधीन कर दिया गया। उसके फलस्वरूप इस विश्वविद्यालय का नाम "ट्रावनकोर - कोच्चि यूनिवर्सिटी" कर दिया गया। उसके बाद 1956 को इन दोनों रियासतों के साथ "मलबार" नामक रियासत को भी जोड़कर "ऐक्य केरल" रूपायित हो गया तो इस विश्वविद्यालय का पुनर्नामकरण हुआ। तब से यह "केरल विश्वविद्यालय" नाम से प्रसिद्ध हो गया। "कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा" - इस सरस्वती मंदिर का आदर्श या टीका यही विख्यात तत्व है।

जब मैं केरल विश्वविद्यालय में भर्ती हो गया था तब वहाँ के प्राच्य संकाय (Oriental faculty) तथा विभाग का काम महान पंडित डॉ.पी.के.नारायण पिल्लै कर रहे थे। वे तो उस समय संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल थे। बाद में 1961-62 को संस्कृत एवं मलयालम दोनों भाषाओं के अलग-अलग विभाग हुए और दोनों विभाग के लिए अलग-अलग अध्यक्ष नियुक्त हो गये थे। डॉ ए सी कृष्ण वारियर पदों के दायित्वों का निर्वहण बड़ी सफलता से मैं कर सका। इसके अतिरिक्त मैं 1984 से 1986 तक महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय (कोट्टयम) के डीन ऑफ फाइन अट्र्स (Deen of Fine Arts) का दायित्व भी निबाहता था। उसी प्रकार 1993-1996 के समय पर केरल कलामण्डलम नामक विश्व विख्यात सांस्कृतिक संस्था का मैं अध्यक्ष था। इतना ही नहीं, किल्लीक्कुरिश्शिमंगलम के (मलप्पुरम जिला) "कुंचन स्मारक" के और राजधानी के 'मार्गी' नामक सांस्कृतिक संस्था के भी अध्यक्ष का भार मैंने अच्छे ढंग से संभाला था। वैसे ही "स्वाति तिरुनाल् संगीत सभा" तथा कथकली क्लब की शासन-मंडली का अंग बनकर दोनों सांस्कृतिक संस्थाओं की सेवा करने का सुअवसर भी मुझे मिला था। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि केरल विश्वविद्यालय के अतीव गौरवपूर्ण दायित्वों के साथ इतनी बड़ी दूसरी संस्थाओं के संचालन में मैं सहयोग दे सका।

केरल विश्वविद्यालय में अध्यापक का काम करते हुए 1974 में मैंने अपनी पीएच डी भी की। अपने वंदनीय आचार्य श्री डॉ.पी.के. नारायण पिल्लै की प्रेरणा से उन्हीं के उपदेश एवं निरीक्षण में मलयालम भाषा के सर्वप्रथम एम.लिट और पीएच.डी के प्रबंध मैंने समर्पित किये थे और मुझे वे उपाधियाँ दी गई थीं। फिर उन्हीं के साथ विभाग में काम करने का सौभाग्य मिला था। महाकवि उल्लूर के नाम पर

'उल्लूर स्मारक' नामक संस्था के स्थापक एवं अध्यक्ष थे डॉ. नाराायण पिल्लै। उन्होने मुझे उसका उपाध्यक्ष बनाकर उनके साथ काम करने का और भी अवसर दिया। बाद में उन्होंने ही मुझे इस संस्था के अध्यक्ष बना दिया। इस अवसर पर भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. एस राधाकृष्ण ने इस संस्था में आकर भाषण दिया था और समस्त केरल साहित्य परिषद् के वार्षिक समारोह का उद्घाटन भी किया था। इस संस्था की ओर से श्री वटक्कुमकूर रामराज वर्मा की जन्मशती का समारोह बड़े धूमधाम से हुआ था। इसके लिए भारत सरकार की आर्थिक सहायता भी मिली थी। बहुसंख्यक श्रेष्ठ साहित्यकारों ने उसमें अपना योग दिया था और 'राजपथ' नामक एक स्मरण पत्र का प्रकाशन भी हुआ था।

केरल विश्वविद्यालय में अध्यापक का काम करने के साथ ही दूसरे बहुत से दायित्वों एवं कर्तव्यों के निर्वहण के लिए मौके मिले थे; मुझे यह बड़े संतोष की बात थी। विविध विषयों पर अनुसंधान कर मैंने लेख और निबंध लिखकर प्रकाशित किए थे। विभिन्न विषयों पर अनेक समारोहों में मैंने भाषण दिए थे। विवेकानंद इन्स्टिट्यूट में जिसका मैं सेक्रटरी था, भगवद् गीता एवं उपनिषद् पढ़ाता था। कोट्टक्कल आर्यवैद्यशाला के तिरुवनंतपुरम की शाखा के प्रथम डॉक्टर थे श्री रामनकुट्टी वारियर जिनके साथ मेरा भाई जैसा नाता था। उनके पिता जी महान पंडित श्री देशमंगलत्तु राम वारियर थे। उनके कुछ निबंधों का संकलन कर मैंने एक पुस्तक प्रकाशित किया था। उसकी भूमिका भी मैंने लिखी थी। उस पुस्तक का नाम 'आर्षसाहिति' है।

इसी बीच और भी रचनाएँ मैंने की थीं। उनमें प्रमुख है 'श्री स्वाति तिरुनाळ् : जीवनी एवं कृतियाँ'। श्री उत्राटम तिरुनाळ् महाराजा ने श्री स्वाति तिरुनाळ् संगीत सभा के सम्मेलन में इस पुस्तक का प्रकाशन किया था। इसका संशोधित संस्करण भाषा इंस्टिट्यूट के द्वारा बाद में प्रकाशित किया गया था। मुख्यमंत्री श्री उम्मन चाण्डी ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया था। नगर के सुप्रसिद्ध "कनकाक्कुन्नु ओडिटोरियम" के प्रतिष्ठित दर्शकों की सभा में उन्होंने यह गौरव पूर्ण कार्य किया जिससे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया।

उसी प्रकार मेरा दूसरा एक अमूल्य ग्रंथ है "बालराम भरतम" नामक नाट्यशस्त्र का ग्रंथ। श्री कार्तिका तिरुनाळ् महाराजा के द्वारा संस्कृत भाषा में रचित इसकी मूल कृति बिलकुल अलभ्य थी। हस्तलिपियों की ग्रंथशाला से मुझे यह ग्रंथ मिला था और मैंने उसे सटीक अध्ययन के साथ मलयालम भाषा में 1981 को प्रकाशित किया था। आठ सौ से अधिक पन्ने में इस बृहद् ग्रंथ की रचना हुई है। श्री स्वाति तिरुनाळ् संगीत सभा के सम्मेलन में श्रीमती कार्तिका तिरुनाळ् लक्ष्मीबाई ने कलामर्मज्ञ श्री डी.अप्पुक्कुट्टन नायर को यह पुस्तक देकर इसका औपचारिक प्रकाशन किया था। जब मैंने यह ग्रंथ श्री चित्तिरा तिरुनाळ् महाराज को समर्पित किया था तब उन्होंने मेरी प्रशंसा इन शब्दों में की थी - "you highly deserve a D.Litt. Degree for this wonderful work" (इस महत्वपूर्ण लक्ष्यप्राप्ति के लिए आपको अवश्य ही डी.लिट की उपाधि मिले।) धन्यवाद देकर मैंने उनका प्रणाम किया था; मैं कुछ और कह न सका। इसके पहले जब मैंने अपनी पुस्तक ' श्री स्वाति तिरुनाल : जीवनी और कृतियाँ' उन्हें समर्पित की थी तब भी उन्होंने मेरी प्रशंसा की थी।

महाराज श्री चित्तिरा तिरुनाळ् का यह अनुग्रह दस वर्ष के बाद सत्य निकला। 1992 के केरल विश्वविद्यालय के सिंडिक्केट ने उसके सर्वप्रथम डी.लिट् की उपाधि देकर मेरे कठिन परिश्रम का मूल्य चुका दिया। भगवान ने मेरी प्रार्थना सुनी।

(क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

नारियल का पेड गिरकर हमारी 'चावडी' के टूटने की वार्ता बहुत जल्दी गाँव भर में फैल गई। लोग जांच करने के लिए आने लगे... असल में तंपियों के मुख्य परिवार रूपी पुन्नूरमठं की दो छोटी शाखाएँ मात्र ही करिम्पालेत्तु और कुमारमंगलम् हैं। पुन्नूरमठं के प्रबंधक रहे शंकुच्चार और रामच्चार की संतानें और पोते-पोतियाँ एवं मुख्य किसान रूपी कृष्णन नायर के उत्तराधिकारी भी दौड आए। नारियल के पेड़ पर चढ़नेवाले कुंजुकुंजु मूप्पर और पुत्र नारायणन भी आए... हमारे परिवार की बढईगिरी करनेवाले केशवनाशारी और उसके सहायक भी आए। सब ने मिलकर 'चावडी' को तोड़नेवाले नारियल के पेड़ को काटकर हटाने का परिश्रम शुरू किया। जो सहानुभूति रिश्तेदारों में नहीं थी, वह पराये गाँववालों को माताजी से थी।

हमारे दक्षिणी भाग में ही मूल भवन रूपी पुन्नूरमठं था। वह भी बड़ी हवेली थी। वहाँ उस समय पोन्नम्मा तंकच्ची ही रहती थी। माँ की माताजी रूपी कुंजुकुट्टि तंकच्ची की बड़ी बहन की छोटी बेटी थीं यह...। वे माँ से रूढ़ी हुई थीं। रिश्ते में मेरी उप्पाप्पा (बड़ी बहन) होने पर भी उनका बड़ा बेटा और मैं समवयस्क थे।

'चावडी' को तोडने वाले नारियल का पेड़ हमारे नौकर एवं स्थानीय लोग मिलकर काटकर हटाते समय व्यंग्यात्मक हँसी के साथ उप्पाप्पा और उनके पति रूपी कोच्चुकलीक्कल परमेश्वरन पिल्ला पुन्नूरमठं के आंगन में खडे थे..। यह देखने पर, जो नष्ट हुआ था उससे भी अधिक माँ को सतानेवाला उनके गर्व की अनुभूति थी। मेरे वेलायुधा, क्या तूने शत्रुओं को हँसाने का अवसर पैदा किया - ऐसा कहकर ही माँ रोयी थी। पुराने कृषक कृष्णन नायर की भतीजी, माँ की सबसे प्रिय सहेली थी। उनके घर का नाम तिट्टप्पल्लि होने के कारण तिट्टप्पल्लिवाले लोग के रूप में ही मैं और भाई उनको कहते थे। बात जानकर पहुँचे तिट्टपल्लिवाली ने माँ को गले से लगाकर सांत्वना दी।

माँने पूछा : "बच्चों के पिताजी को मैं जानकारी दूँ क्या?" नहीं, सेना में काम करनेवालों को जलदी छुट्टी तो नहीं मिलेगी। यही नहीं, कृष्णापिल्ला आकर क्या कर सकता है? जो हुआ सो हुआ... बस। कुछ समय सांत्वना के शब्द सुनाने के बाद तिट्टप्पल्लिवाले विचारमग्न हो गए। एक रास्ता टूँढ लेने के समान उन्होंने कहा:

"जो भी हो, बड़े महल में जाकर तंपी महोदय को बात बता कर देख लीजिए, घर की छवाई करने के लिए तीन हज़ार पत्ते ही तो चाहिए न? अगर वे चाहें तो तीन हज़ार के बदले तीस हज़ार दे सकते हैं..." ओप्पन्नोन (बड़े भाई) भी मुझसे रूढ़े हुए हैं।

"उनके रूढ़ जाने के लिए भवानी अम्मा ने किया क्या?" मुख उठाये बिना माँ ने कहा : बडे

भाई ने मुझसे कहा था : "बच्चों के पिता जी को छोड़ देने को। "मैंने नहीं माना"।

एक गहरी साँस लेते हुए तिट्टप्पल्लिवाली ने कहा : "जो कुछ भी हो अपना तो अपना ही होता है... भवानीयम्मा के सगे भाइयों में से दोनों ज़िंदा होते तो क्या ऐसा होता? अल्पायु में ही दोनों गुज़र गए।"

तंपी महोदय कहकर स्थानीय लोग आभिचारक एवं प्रसिद्ध विषवैद्य रूपी पी.सी.कुमारन को ही पुकारते हैं। हमारी दादी कुंजुक्कुट्टी तंकच्ची जी की बड़ी बहन का पुत्र है कुमारन तंपी। माँ का सगा भाई नहीं हैं। फिर भी बहनों के पुत्रों में से उम्र में सबसे बड़े सदस्य के रूप में वे ही पुन्नूर मठं के स्वामी हैं। मेरा जब जन्म हुआ था तब पुन्नूर परिवार के अधीन छः घर थे. पुन्नूरमठं, बड़ा महल, ऊञ्ञाल मठं (झूला मठं), करिंपालेत्तु, पुलित्तिट्टा, मेडयिल आदि। इनमें से बड़ा महल, पुन्नूरमठं एवं ऊञ्ञाल मठं और करिंपालेत्तु मठं जहाँ मेरा जन्म हुआ, हवेलियाँ थीं। मेडयिल तो, पुरानी वास्तु शिल्प शैली में बनाया गया द्विमंजिला मकान था। 'बडे महल' में ही परिवार का मुखिया रहते थे। बड़े महल से लगकर ही परिवार का मंदिर था। धर्मशास्ता ही प्रतिष्ठा थे। विष चिकित्सा और मंदिर का पर्यवेक्षण मुखिया का दायित्व था। कुमारन तंपी नामक कुमारन महोदय से स्थानीय लोगों को भय और आदर था। जिस किसी भी सर्प के डँसने पर विष उतारने में सक्षम विषवैद्य होने से ही आदर की भावना थी। उनमें जो आभिचारक था उससे भय की भावना भी थी।

तिट्टप्पल्लिवालों का उपदेश स्वीकार करके पुलियिलक्करा धोती (केरल की विशेष किस्म की धोती) और नेर्यतु (उत्तरीय) पहनकर पुरानी छतरी बगल में रखकर मुझे हाथ से पकडती हुई माँ 'बडे महल' की ओर चलीं। मेरे बाद जन्मे मेरे बड़े भाई, जन्म के बाद कुछ ही दिनों में मर जाने से मैं दीर्घकाल तक माँ का कनिष्ट पुत्र बना। एक एक बच्चे के मर जाने पर अधिक वात्सल्य भाव से माँ ने मुझे गले लगाया। मैं जब नटखट दिखाता तो उनकी याद दिलाकर ही कोसती थीं।

"बदमाश कहीं का, मेरे पीछे कोई न आयें यह कहकर ही तू भूमि में आया। इसलिए ही तेरा कोई छोटा भाई न हुआ है।" बच्चा होने पर भी माँ ने जब यह कहा तो मैं बुरी तरह रोता था। साढ़े तीन साल, दो साल और सिर्फ छः महीने की उम्र के तीन बच्चे मेरी छोटी भावना में व्यक्त हो जाते थे। माँ कहती हैं कि इन तीनों ही हत्या मैंने ही की थी।

'बड़े महल' में सर्पदंश लगकर आनेवाले रोगियों की बड़ी कतार जा चुकी थी। प्रभात पूजा के बाद पारिवारिक मंदिर का दरवाज़ा भी बंद हुआ। चाचाजी अगवाड़े में बेंत की कुरसी पर विश्राम कर रहे हैं। छोटी बहन बडे भाई के आगे आना नहीं चाहिए। ऐसा नियम उस समय 'तंपी खानदान' में निष्ठापूर्वक पालन किया जाता था। वास्तव में इस विषय में अधिक सतर्कता का पालन स्त्रियाँ ही करती थीं।

करिम्पालेत्तु घर और बडे महल के बीच अधिक दूरी नहीं है। हमारे घर के पिछवाडे की पगडंडी पार करने पर 'पेरुंकुलम' नाम से कहे जानेवाले मंदिर के तालाब में पहुँचता है। सुब्रह्मण्य मंदिर के उत्तरी भाग में ही पेरुंकुलम है। हम पगडंडी पार कर मंदिर के सामने से पंपा नदी के तट की ओर जानेवाली सडक पर प्रवेश करते हुए पेरुंकुलम के उत्तरी भाग में स्थित सडक से आगे जाने पर बड़ा महल हो गया।

(क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. कुंतक कृत विचित्र मार्ग किस रीति का पर्याय है?
2. डी.एच.लॉरेंस किस सिद्धांत के प्रवर्तक है?
3. विद्यापति कृत पदावली की भाषा है?
4. वीर बाहुबलिरास किसकी रचना है?
5. रीतिकाल को श्रृंगारकाल किसने कहा?
6. 'बकरी' किसका नाटक है?
7. 'आह वेदना मिली विदाई' गीत किस नाटक में है?
8. 'एक पतंग अनेत आकाश में' किसके अंतर्गत आती है?
9. किस आचार्य ने सौंदर्य को ही अलंकार माना है?
10. 'देहाती दुनिया' किसकी कृति है?
11. देवकी नंदन खत्री कृत 'भूतनाथ' के शेष भागों की रचना किसने की?
12. प्रेमचंद के किस उपन्यास को 'वैनिटी फेयर' से प्रभावित माना जाता है?
13. 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' किसकी आत्मकथा है?
14. भारतेंदु युगीन जासूसी उपन्यासों पर किसका प्रभाव है?
15. 'प्रवासी की आत्मकथा' के लेखक कौन है?
16. 'अब न नाम महत्वपूर्ण है, न घटना, न चरित्र। महत्वपूर्ण है - एक संवेदना एक इंटेन्स मोमेंट।'- रवींद्र कालिया ने यह किसके विषय में कहा?
17. 'गद्यकाव्य मीमांसा' किसकी रचना है?
18. 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास के लेखक कौन है?
19. भारतेंदु द्वारा स्थापित रंगमंच किससे प्रभावित था?
20. 'भेडिया धसान' निबंध के लेखक कौन है?

उत्तर

1. गौडीय
2. शैली
3. अवहट्ट
4. शालिभद्र सूरि
5. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
7. स्कंदगुप्त
8. रेखाचित्र
9. वामन
10. शिवपूजन सहाय
11. दुर्गाप्रसाद खत्री
12. सेवा सदन
13. हरिवंशराय बच्चन
14. अगथा क्रिस्टी
15. भवानी दयाल संन्यासी
16. सचेतन कहानी
17. अंबिका दत्त व्यास
18. गिरिराज किशोर
19. बंगला
20. प्रताप नारायण मिश्र